शब्द-योगी

डॉ. कन्हैयालाल सहल

लेखक

डॉ. हेतु भारद्वाज

प्रकाशक

राजस्थान साहित्य अकादमी

उदयपुर (राज)

क्रम

दो शब्द

डा० कन्हैयालाल सहल राजस्थान के उन मनीषियों में से थे जिन्होंने अपने कृतित्व के बल पर हिन्दी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनायी। वे भावयित्री तथा कारयित्री प्रतिभा के धनी थे तथा उनका रचा गया विपुल साहित्य स्थायी महत्व का है। भाव प्रवण कवि व्यंग्यपूर्ण ललित निबंधकार, प्रबुद्ध समीक्षक मौलिक अनुसंधाता प्रकाण्ड भाषा शास्त्री दृष्टिवान सम्पादक, मौलिक चिन्तक आदि अनेक रूपों में उन्होंने हिन्दी और राजस्थानी साहित्य की सेवा की।

लगभग 3 वर्ष के कठोर परिश्रम से मैंने 'डॉ कन्हैयालाल सहल व्यक्तित्व और कृतित्व' नामक ग्रंथ सम्पादित किया था जिसका प्रकाशन 1972 में हुआ। इस ग्रंथ में डा सहल के बहुआयामी व्यक्तित्व का आकलन करने का सार्थक प्रयास किया गया था। इस आलेख को तैयार करने में मैंने इस ग्रंथ में सम्पादित सामग्री से पूरी मदद ली है।

राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर की 'हमारे पुरोधा' योजना स्वागत के योग्य है क्योंकि इसके माध्यम से राजस्थान के पुरानी पीढ़ी के रचनाकारों का स्थायी रूप महत्व प्रतिपादित हो सकता है। निश्चय ही यह पुण्य का कार्य है। इसके लिए अकादमी अध्यक्ष डॉ प्रकाश आतुर बधाई के पात्र है।

मैं अकादमी का हृदय से कृतज्ञ हूं कि मुझे डा कन्हैयालाल सहल पर यह प्रस्तुति तैयार करने का कार्य सौंपा गया। इस आलेख से तथा इसमें संकलित रचनाओं से डा कन्हैयालाल सहल की साहित्यिक मनीषा का परिचय मिल सकेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

—हेतु भारद्वाज

दो शब्द

डॉ० कन्हैयालाल सहल राजस्थान के उन मनीषियो मे से थे जिन्होने अपने कृतित्व के बल पर हिन्दी साहित्य मे अपनी विशिष्ट पहचान बनायी। वे भावयित्री तथा कारयित्री प्रतिभा के धनी थे तथा उनका रचा गया विपुल साहित्य स्थायी महत्व का है। भाव प्रवण कवि व्यग्यपूर्ण ललित निबधकार, प्रबुद्ध समीक्षक मौलिक अनुसधाता प्रकाण्ड भाषा शास्त्री, दृष्टिवान सम्पादक, मौलिक चिन्तक आदि अनेक रूपो म उन्होने हिन्दी और राजस्थानी साहित्य की सेवा की।

लगभग 3 वर्ष के कठोर परिश्रम स मैंने 'डॉ कन्हैयालाल सहल व्यक्तित्व और कृतित्व नामक ग्रथ सम्पादित किया था जिसका प्रकाशन 1972 मे हुआ। इस ग्रथ म डा सहल के बहुआयामी व्यक्तित्व का आकलन करने का सार्थक प्रयास किया गया था। इस आलेख का तैयार करन मे मैंने इस ग्रथ मे सम्पादित सामग्री स पूरी मदद ली है।

राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर की 'हमारे पुरोधा योजना स्वागत के योग्य है क्योकि इसके माध्यम स राजस्थान के पुरानी पीढी के रचनाकारो का स्थायी रूप महत्व प्रतिपादित हो सकता है। निश्चय ही यह पुण्य का काम है। इसके लिए अकादमी अध्यक्ष डॉ प्रकाश आतुर बधाई के पात्र हैं।

मैं अकादमी का हृदय स कृतज्ञ हू कि मुझे डा कन्हैयालाल सहल पर यह प्रस्तुति तैयार करन का काय सौंपा गया। इस आलेख से तथा इसम सकलित रचनाओ स डा कन्हैयालाल सहल की साहित्यिक-मनीषा का परिचय मिल सकेगा एसा मेरा विश्वास है।

—हेतु भारद्वाज

दो शब्द

डॉ० कन्हैयालाल सहल राजस्थान के उन मनीषियों में से थे जिन्होंने अपने कृतित्व के बल पर हिन्दी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनायी। वे भावयित्री तथा कारयित्री प्रतिभा के धनी थे तथा उनका रचा गया विपुल साहित्य स्थायी महत्व का है। भाव प्रवण कवि व्यंग्यपूर्ण ललित निबंधकार प्रबुद्ध समीक्षक मौलिक अनुसंधाता प्रकाण्ड भाषा शास्त्री दृष्टिवान सम्पादक, मौलिक चिंतक आदि अनेक रूपों में उन्होंने हिन्दी और राजस्थानी साहित्य की सेवा की।

लगभग 3 वर्ष के कठोर परिश्रम से मैंने 'डॉ कन्हैयालाल सहल व्यक्तित्व और कृतित्व' नामक ग्रंथ सम्पादित किया था जिसका प्रकाशन 1972 में हुआ। इस ग्रंथ में डा सहल के बहुआयामी व्यक्तित्व का आकलन करने का सार्थक प्रयास किया गया था। इस आलेख को तैयार करने में मैंने इस ग्रंथ में सम्पादित सामग्री से पूरी मदद ली है।

राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर की 'हमारे पुरोधा' योजना स्वागत के योग्य है क्योंकि इसके माध्यम से राजस्थान के पुरानी पीढ़ी के रचनाकारों का स्थायी रूप महत्व प्रतिपादित हो सकता है। निश्चय ही यह पुण्य का कार्य है। इसके लिए अकादमी अध्यक्ष डा प्रकाश आतुर बधाई के पात्र हैं।

मैं अकादमी का हृदय से कृतज्ञ हूं कि मुझे डा कन्हैयालाल सहल पर यह प्रस्तुति तैयार करने का कार्य सौंपा गया। इस आलेख से तथा इसमें संकलित रचनाओं से डा कन्हैयालाल सहल की साहित्यिक मनीषा का परिचय मिल सकेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

—हेतु भारद्वाज

वक्तव्य

राजस्थान साहित्य अकादमी की सचालिका सभा के निर्णयानुसार प्रात के दिवगत साहित्यकारो के योगदान को रेखाकित करने और नई पीढी को उनके कृतित्व से परिचित कराने की दृष्टि से 'हमारे पुरोधा सिरीज' का प्रकाशन प्रारभ किया जा रहा है। इस सिरीज म उन पूर्वज साहित्यकारो के व्यक्तित्व-कृतित्व को प्रेक्षित करने का सकल्प है जिन्होने सृजन-परपरा को नये आयाम दिये और रचनाधर्मिता के क्षेत्र मे मील के पत्थर सा महत्त्व अर्जित किया। इसके पूर्व प्रात के समकालीन रचनाकारो पर कृतिकार प्रस्तुति योजना के अतर्गत जो मोनोग्राफ प्रकाशित हुए हैं, उनका सर्वत्र स्वागत हुआ है। इस सिरीज के माध्यम से प्रयत्न यही है कि हम अपने उन पुरोधाओ को श्रद्धाजलि अर्पित कर सकें जो आज अतीत के विस्मृति गर्भ मे चले गये है लेकिन जिन्होने सृजन के क्षेत्र मे अपनी पहचान बनाई मार्ग-दर्शन दिया और इस प्रात की रचना क्षमता को भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया।

यह पुस्तक हमारे पुरोधा सिरीज का प्रथम प्रकाशन है।

डा कन्हैयालाल सहल का हिन्दी तथा राजस्थानी दोनो मे ही ऐतिहासिक महत्त्व का योगदान रहा है। उनका प्रखर पाडित्य और सहज, निश्छल व्यक्तित्व अपने समकालीनो के लिये प्रेरणा का स्रोत रहा है। कवि समालोचक निबन्धकार अनुसधाता, सम्पादक, शिक्षक एव निष्णात शिक्षा प्रबन्धक के रूप म उन्होंने कीर्तिमान स्थापित किये और अपने बहुआयामी विपुल ज्ञान भडार और व्यक्तित्व की निरभिमानता द्वारा जो प्रभाव अकित किया वह समय की रेत चढ जाने के बाद भी मिटा नही है बल्कि और अधिक दीप्तिमान होकर 'लाइट हाउस' का का काम दे रहा है।

राजस्थान मे, काव्य म सक्षम शिल्पगत प्रयोगो साकेतिक भाषा शैली और भाव क्षण को तीव्रतम अभिव्यक्ति देने मे समर्थ, व्यापक अर्थ-बोध से सम्पृक्त, नये परिवेश व नवबोध वाली कविताओ के प्रारम्भकर्त्ताओ मे डा सहल का नाम शीर्ष पर है। उन्होंने काव्य क्षितिज के नये आयामो की ओर ध्यान दिया और एक नई प्रवृत्ति की शुरुआत का नेतृत्व किया। उन्होने नये प्रतीको के माध्यम से अर्थ-बोध का विस्तार दिया और अनुभूतियो को नये स्तर पर प्रतिस्थापित किया। उनकी प्रकाशित काव्य कृतियो-'प्रयोग', क्षणो के याग तथा समय

की पीढियों म उनक चितक-व्यक्तित्व का सहज ही रांगाकित किया जा सकता है। सहलजी के काव्य का गुणात्मक पक्ष बडा प्रबल है। उन्होंने ग्रास्थावादी दृष्टि स परम्परा और प्रयोग का मानव विकास क सन्दभ म देसन की चेष्टा की है। डा रामविलास शर्मा, दादा माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ रामकुमार वर्मा प्रभृति विद्वानो ने उनक काव्य शिल्प की मुक्तकठ स प्रशसा की है। व ग्रपन परिवश क प्रति पूर्णत सजग रह और युगबोध व भावबोध के बीच अभिन्नता स्थापित करन का साधक प्रयत्न किया। उनकी लघु कविताम्रो म गभीर चिंतन, भाव माधुर्य और गतिशील विचारो का आकार मिला है।

सहलजी की कवितायें समय चिंतन पर आधारित है। यह कालचितन ही उनके काव्य सृजन का मरुण्ड रहा है। जीवन के अत्यधिक सामान्य काय व्यापारो और घटना प्रसगो के माध्यम स उदभूत उनका कालचिंतन काव्यबद्ध होकर कोई न कोई महत्त्वपूर्ण निष्कप दे जाता है। उनकी दुर्बलता है काव्यात्मक भगिमा का अभाव ग्रार गद्यात्मक प्रवाह की विपुलता। इसी कारण नई कविता क प्रमुख प्रवतको व विकास क सहयोगी होने पर भा व स्वय अपन काव्यबोध का नई कविता के अनुरूप सरचना और शिल्प के स्तर पर कोई खास उत्कप नही द पाये। एक ही चिंतनधारा जो उनकी प्रारभिक काव्यकृति मे है, उनक सभी काव्यसकलना म अतर्धारा की तरह कुछ अधिक धीर, गभीर होकर गतिशील रही है।

सहलजी का कृतित्व उनकी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्नता का परिचायक है। एक सवेदनशील कवि, व्यग्यशक्ति सम्पन्न निबन्धकार प्रबुद्ध समीक्षक, मौलिक व्याख्याकार मौलिक अनुसधाता, भाषाशास्त्री कुशल सम्पादक आदि अनेक रूपो की ओर उनका यह साहित्य सकेत करता है। वे सच्चे अर्थों मे शब्द योगी थे।

डा हेतु भारद्वाज न सहलजी के व्यक्तित्व कृतित्व पर लिखने के हमार अनुरोध को स्वीकार किया इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। उन्होंने बड श्रम स सहलजी क समूच सृजन की पडताल की है। सहलजी की कतिपय चयनित रचनायें भी इस म सम्मिलित की गइ ह ताकि उनके सृजन और उसके आकलन पर एक साथ विचार करो मे सुविधा रह।

राजस्थान साहित्य अकादमी का अपने पुरोधाम्रो को श्रद्धाजलि देने का यह विनम्र प्रयास है। आशा है सुधिजन हम प्रोत्साहित करेंगे।

डॉ प्रकाश आतुर
अध्यक्ष
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

वक्तव्य

राजस्थान साहित्य अकादमी की संचालिका सभा के निर्णयानुसार प्रांत के दिवंगत साहित्यकारों के योगदान को रेखांकित करने और नई पीढ़ी को उनके कृतित्व से परिचित कराने की दृष्टि से 'हमारे पुरोधा सिरीज' का प्रकाशन प्रारंभ किया जा रहा है। इस सिरीज में उन पूर्वज साहित्यकारों के व्यक्तित्व-कृतित्व को प्रेक्षित करने का संकल्प है जिन्होंने सृजन-परंपरा को नये आयाम दिये और रचनाधर्मिता के क्षेत्र में मील के पत्थर सा महत्त्व अर्जित किया। इससे पूर्व प्रांत के समकालीन रचनाकारों पर कृतिकार-प्रस्तुति योजना के अंतर्गत जो 'मोनोग्राफ' प्रकाशित हुए हैं, उनका सर्वत्र स्वागत हुआ है। इस सिरीज के माध्यम से प्रयत्न यही है कि हम अपने उन पुरोधाओं को श्रद्धांजलि अर्पित कर सकें जो आज अतीत के विस्मृति गर्भ में चले गये हैं लेकिन जिन्होंने सृजन के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई, मार्ग दर्शन दिया और इस प्रांत की रचना क्षमता को भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया।

यह पुस्तक हमारे पुरोधा सिरीज का प्रथम प्रकाशन है।

डॉ कन्हैयालाल सहल का हिंदी तथा राजस्थानी दोनों में ही ऐतिहासिक महत्त्व का योगदान रहा है। उनका प्रखर पांडित्य और सहज निश्छल व्यक्तित्व अपने समकालीनों के लिये प्रेरणा का स्रोत रहा है। कवि, समालोचक, निबंधकार, अनुसंधाता, सम्पादक, शिक्षक एवं निष्णात शिक्षा प्रबंधक के रूप में उन्होंने कीर्तिमान स्थापित किये और अपने बहुआयामी विपुल ज्ञान भंडार और व्यक्तित्व की निरभिमानता द्वारा जो प्रभाव अंकित किया वह समय की रेत चढ़ जाने के बाद भी मिटा नहीं है बल्कि और अधिक दीप्तिमान होकर 'लाइट हाउस' का का काम दे रहा है।

राजस्थान में काव्य में सक्षम शिल्पगत प्रयोगों, सांकेतिक भाषा शैली और भोगे क्षण को तीव्रतम अभिव्यक्ति देने में समर्थ, व्यापक अर्थ-बोध से सम्पृक्त नये परिवेश व नवबोध वाली कविताओं के प्रारम्भकर्ताओं में डा सहल का नाम शीर्ष पर है। उन्होंने काव्य क्षितिज के नये आयामों की ओर ध्यान दिया और एक नई प्रवृत्ति की शुरूआत का नेतृत्व किया। उन्होंने नये प्रतीकों के माध्यम से अर्थ-बोध को विस्तार दिया और अनुभूतियों को नये स्तर पर प्रतिस्थापित किया। उनकी प्रकाशित काव्य कृतियों-'प्रयोग', 'क्षणों के धागे' तथा 'समय

की सीढ़ियाँ म उनके चितक-व्यक्तित्व का सहज ही रेखाकिन किया जा सकता है। सहलजी के काव्य का गुणात्मक पक्ष बडा प्रबल है। उन्होंने आस्थावादी दृष्टि स परम्परा और प्रयोग को मानव विकास के सदर्भ मे देखने की चेष्टा का है। डा रामविलास शर्मा, दादा माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ रामकुमार वर्मा प्रभृति विद्वानो न उनके काव्य शिल्प की मुक्तकठ से प्रशसा की है। व अपन परिवेश क प्रति पूर्णत सजग रहे और *युगबोध व भावबोध के बीच अभिन्नता स्थापित* करन का सार्थक प्रयत्न किया। उनकी लघु कविताओ म गभीर चिंतन, भाव माधुर्य और गतिशील विचारो का आकार मिला है।

सहलजी की कवितायें समद चिंतन पर आधारित है। यह कालचिंतन ही उनक काव्य सृजन का मेरुदड रहा है। जीवन के अत्यधिक सामान्य काय-व्यापारो और घटना प्रसगो के माध्यम स उद्भूत उनका कालचिंतन काव्यबद्ध होकर कोई न कोई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष द जाता है। उनकी दुर्बलता है काव्यात्मक भगिमा का अभाव और गद्यात्मक प्रवाह की विपुलता। इसी कारण नई कविता क प्रमुख प्रवतको व विकास क सहयोगी होन पर भी व स्वय अपने काव्यबोध को नई कविता के अनुरूप सवेदना और शिल्प के स्तर पर कोई खास उत्कर्ष नही दे पाये। एक ही चितनधारा जो उनकी प्रारभिक काव्यकृति मे है उनक सभी काव्यसकलनो म अतर्धारा की तरह कुछ अधिक धीर गभीर होकर गतिशील रही है।

सहलजी का कृतित्व उनकी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्नता का परिचायक है। एक सवेदनशील कवि, व्यग्यशक्ति सम्पन्न निबधकार प्रबुद्ध समीक्षक, मौलिक व्याख्याकार मौलिक अनुसधाता भाषाशास्त्री कुशल सम्पादक आदि अनक रूपो की ओर उनका यह साहित्य सकेत करता है। वे सच्चे अर्थों मे शब्द योगी थ।

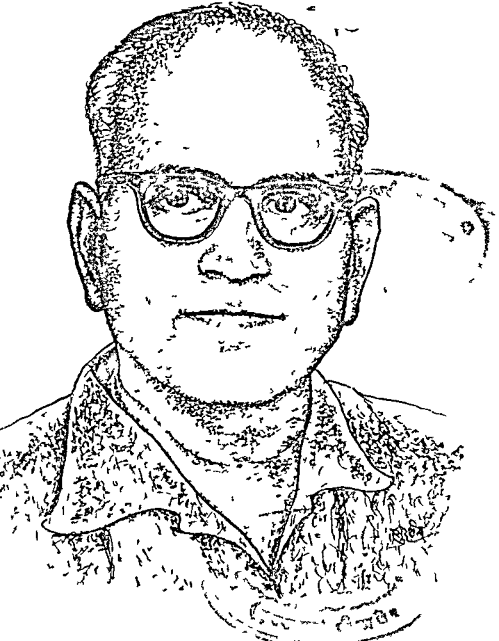
डा हेतु भारद्वाज न सहलजी के व्यक्तित्व कृतित्व पर लिखने के हमारे अनुरोध को स्वीकार किया इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। उन्होंने बडे श्रम स सहलजी क समूचे सृजन की पडताल की है। सहलजी की कतिपय चयनित रचनाये भी इस मे सम्मिलित की गई है ताकि उनके सृजन और उसके आकलन पर एक साथ विचार करने मे सुविधा रहे।

राजस्थान साहित्य अकादमी का अपने पुरोधाओ को श्रद्धाजलि देन का यह विनम्र प्रयास है। आशा है सुधिजन हम प्रोत्साहित करेंगे।

डॉ प्रकाश आतुर
अध्यक्ष
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

शब्द-यात्रा की पडताल

(मूल्यांकन)



डॉ कन्हैयालाल सहल– हिन्दी तथा राजस्थानी का एक विशिष्ट नाम जिसने अपनी साधना के बल पर राजस्थान की सीमाएं लांघ अखिल भारतीय स्तर पर कीर्ति अर्जित की। पण्डित कन्हैयालाल सहल एक व्यक्तित्व का नाम, जिसकी संरचना समरसता प्रशान्तता, सहजता सरलता स्नेहशीलता, निरभिमानिता आदि तत्वों से हुई। और भी आगे जाकर देखते हैं तो पाते हैं कि डा कन्हैयालाल सहल एक संस्था का नाम था, जिसमें एक भाव प्रवण, उदार तथा निर्विकार व्यक्ति, एक जन सम्मान प्रवर्धक एक श्रद्धास्पद शिक्षक एवं भावुक कवि तथा ललित निबंधकार, एक सफल सम्पादक एवं सरल व्याख्याकार, एक सुधी-समीक्षक एक जिज्ञासु अन्वेषक, एक सही मार्ग दर्शक जैसे अनेक अन्तर्भाग एक साथ सक्रिय थे।

निश्चय ही डा कन्हैयालाल सहल राजस्थान के उन अग्रणी रचनाकारों में से थे *जिन्हें अपने रचनाक्रम के बल पर अखिल भारतीय स्तर पर स्वीकृति* मिली तथा उन्होंने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से आगे आने वाली पीढ़ी का निर्माण किया।

जीवन वृत्त एवं व्यक्तित्व भावयित्री एवं कारयित्री दोनों प्रतिभाओं से सम्पन्न डॉ० कन्हैयालाल सहल का जन्म राजस्थान के शेखावाटी अंचल के नवलगढ़ नामक नगर में विक्रम संवत् 1968 के मार्गशीर्ष के शुक्ल पक्ष की तृतीया को हुआ था। नवलगढ़ का सहल परिवार अपने सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत संस्कारों के लिए प्रसिद्ध था। डॉ० कन्हैयालाल सहल के पिता पं० रामकुमार सहल संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे तथा कर्मकाण्ड में निष्णात एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे जबकि माता श्रीमती वासन्ती देवी सात्त्विक प्रकृति की सरल महिला थी। नवलगढ़ नगर में पं रामकुमार सहल अपने दयालु धर्मशील एवं सेवा भावी स्वभाव के कारण नगरवासियों की श्रद्धा के पात्र थे। उनके सात पुत्र थे जिनमें डा० कन्हैयालाल सहल चौथे स्थान पर थे। पिता ने अपने सभी पुत्रों

ना उच्च शिक्षा दिलायी, परिणाम स्वरूप सहल परिवार के सभी लाग शिक्षा एव प्रशासन के क्षेत्र म उच्चतम शिखर तक पहुच ।

कन्हैयालाल सहल का प्रारम्भिक शिक्षा नवलगढ़ म ही हुई । व बचपन स ही बहुत मधावी और अध्यवसायी थ । बचपन म ही उनकी दृढ सकल्पशक्ति एव सतत अध्यवसाय की प्रवत्ति प्रकट हो गयी और नवलगढ म मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करन के बाद व विद्या अध्ययन हेतु जयपुर चले गये और 1928 ई० म उन्हान महाराजा कालज जयपुर से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा उन्हान अपनी कक्षा म प्रथम स्थान प्राप्त किया । बी० ए० करने के पश्चात व शारदा सदन मिडिल स्कूल म शिक्षक पद पर नियुक्त हुए तथा बाद मे कई वष इसी सस्था के प्रधानाध्यापक भी रहे । यहीं काम करत हुए उन्होने हिन्दी म एम० ए० किया ।

1939 ई० म व तत्कालीन बिडला इण्टर कालेज पिलानी म हिन्दी क अध्यापक नियुक्त हाकर चले गये । वहा उन्ह प० सूयकरण पारीक का सानिध्य मिला । तथा पिलानी म रहते हुए डा० सहल का अपनी प्रतिभा का विकास का पूर्ण अवसर मिला वही रहते हुए उन्होंने सस्कृत मे भी एम० ए० किया तथा राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन' विषय पर राजस्थान विश्व विद्यालय से पी एच डी की उपाधि प्राप्त की । इस शाध प्रबन्ध की प्रशसा डा सुनीति कुमार कुमार चटर्जी न शब्दा म की– The approach is refreshing by objective and the author shows evidence of a full understanding and appreciation of the problems he has before him It is a contribution of great value to our study of the proverbial literature in an important modern Indian Language dealing with the people of one of more advanced States of India It is scientifically conceived and its execution is quite impecable stylistically The work forms good literature too जबकि प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ दशरथ शर्मा न स्पष्ट शब्दा म कहा Rajasthani Kahavaten Ek Adhyayan is one of the best Hindi thesis that I have read so far on account of its originility vigrous style and excellent presentation of facts the thesis is highly Commendable

पिलानी की इस शिक्षण सस्था का निरन्तर विकास हाता गया और उसके साथ ही डा कन्हैयालाल सहल क ज्ञानार्जन की प्रक्रिया अनवरत रूप से आग

पढ़ती रही। सूर्यकरण पारीक के देहावसान बाद तो पिलानी की संस्था में हिन्दी विभाग के विकास का सम्पूर्ण कार्य डा सहल के निर्देशन में ही सम्पन्न हुआ। वस्तुत वे हिन्दी विभाग के पर्याय बन गये। 1952 में बिड़ला आर्ट्स कालेज की स्थापना हुई तो डॉ कन्हैयालाल सहल को उप प्राचार्य के पद पर नियुक्ति मिल गयी। इस पद पर उन्होंने 1961 तक सफलतापूर्वक कार्य किया। फिर दो वर्ष तक वे इस कालेज के प्राचार्य भी रहे। पिलानी के सारे कालेजों को मिलाकर जब बिड़ला इन्स्टीटयूट की स्थापना हुई तो डॉ कन्हैयालाल सहल को हिन्दी-संस्कृत विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किया गया। इस पद पर कार्य करते हुए उन्होंने पिलानी में हिन्दी तथा राजस्थानी में शोध कार्य को संरक्षण दिया तथा स्नातकोत्तर स्तर पर छात्रों को अध्ययन के लिए प्रोत्साहित किया।

हिन्दी के विकास के लिए पिलानी में डॉ सहल ने बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया— (1) पिलानी के छात्रों एवं अध्यापकों में हिन्दी के प्रति रुचि जागृत करने के लिए उन्होंने पिलानी में हिन्दी भवन की स्थापना की (2) पिलानी में 'हिन्दी-साहित्य समिति' की स्थापना की जिसके माध्यम से आपने हिन्दी प्रचार की दिशा में उल्लेखनीय योग दिया (3) बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट, पिलानी की मुख पत्रिका 'मरु भारती' का लगभग दो दशक तक सम्पादन किया जिसके माध्यम से आपने हिन्दी तथा राजस्थानी के अज्ञात तथा अप्राप्य साहित्य को संरक्षण दिया राजस्थान की दुर्लभ लोक कथाओं, कहावतों तथा प्रवादों का संग्रह तथा सकलन किया। निहालदे-सुलतान जैसी बृहद लोक कथा का सकलन अपने आप में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

डॉ कन्हैयालाल सहल को श्री घनश्याम दास बिड़ला का सहज स्नेह तथा विश्वास प्राप्त था इसीलिए उन्हें बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट के सेक्रेटरी पद का भार उन्हें सौंपा, जिस पर उन्होंने अपने जीवन के अंतिम दिनों में कार्य किया।

पिलानी के सार्वजनिक क्षेत्र में डा सहल सदा सक्रिय रहे तथा पिलानी नगर के निर्माण में उनका योगदान सराहनीय रहा। वे वर्षों पिलानी नगरपालिका के प्रशासक रहे, 13 14 वर्षों तक पिलानी में आनरेरी मजिस्ट्रेट रहे। इस पद पर उन्होंने जो फैसले दिए वे सदा निष्पक्ष और लोकहितकारी रहे।

डा कन्हैयालाल सहल अपनी साहित्यिक सेवाओं के कारण प्रदेश की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक गतिविधियों के केन्द्र रहे। राजस्थान साहित्य अका-

दमी क सदस्य, राजस्थान पाठय-पुस्तक राष्ट्रीयकरण मण्डल क सयोजक राज स्थान विश्वविद्यालय की कला सकाय सीनेट एकेडेमिक काउंसिल के सदस्य तथा हिन्दी पाठ्यक्रम समिति के सयोजक के रूप म उन्होने हिन्दी की प्रगति क लिए उल्लेखनीय काय किया। आकाशवाणी से उनकी अनेक वार्ताएँ ता प्रसा रित होती ही रही वे रेडियो सलाहकार समिति क सदस्य भी रह।

डा कन्हैयालाल सहल एक अध्ययनशील अध्यापक थ। उन्होने हिन्दी साहित्य के अध्ययन क साथ ही सस्कृत, पालि अपभ्र श राजस्थानी तथा अग्रेजी साहित्य का गहन अध्ययन किया। साहित्य के साथ दर्शन धम तथा मनोविज्ञान जैसे विषयो का गम्भीर अध्ययन किया और उन पर अधिकार पूवक लिखा। डा नगेन्द्र ने उनके विषय म ठीक ही लिखा है कि डॉ कन्हैयालाल सहल "बहुत अधीत पडित है। सस्कृत साहित्य काव्य शास्त्र, हिन्दी साहित्य शास्त्र और अग्रेजी साहित्य का उन्होने सम्यक अध्ययन किया है। इसक अतिरिक्त उन्ह अन्य भाषाओ के साहित्य म भी परिचय है।

डा सहल के व्यक्तित्व म भावयित्री एव कारयित्री प्रतिभाओ का अद भूत समन्वय था, साथ ही गम्भीर पाण्डित्य क साथ सादगी और निरभिमानिता भी उनके व्यक्तित्व के अविभाज्य अग थ। इन्ही गुणो के कारण डॉ सहल एक कुशल एव सहृदय शिक्षक क रूप म लोकप्रिय हुए। उन्होने अपने विद्यार्थियो का न केवल गहन अध्ययन के लिए प्रेरित किया अपितु उन्होने अपने शिष्यो क व्यक्तित्व का निर्माण भी किया। उनके व्यक्तित्व के विषय म उनके प्रमुख शिष्य तथा हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्रीकात जोशी के ये शब्द उल्लखनीय है 'डा कन्हैयालाल सहल राजस्थान की एसी विभूति हैं, जिन्होने हिन्दी साहित्य की समीक्षा काव्य व निबध विधाओ और राजस्थानी साहित्य क उन्नयन मे अपना समस्त जीवन अर्पित कर दिया है एक महान शिक्षक के रूप म भी आपकी सेवाएँ मूल्यातीत हैं। उनके शिष्य आज उनके सामने प्रणत हैं और इस बात का गव अनुभव करते हैं कि वे उनके शिष्यत्व का सौभाग्य प्राप्त कर सकें। व्यक्तिगत जीवन म भी डा सहल सादा जीवन उच्च विचार की प्रतिमूर्ति रहे।'

डॉ सहल स्वभाव से अत्य त मृदु किन्तु अनुशासन प्रिय, सौम्य, धीर, गम्भीर, परिश्रमी निरभिमानी, चितक तथा मौलिक विचारक थे। व समीक्षक निबधकार, कवि सम्पादक, व्यग्यकार भाष्यकार अनुसधाता आदि सभी कुछ एक साथ थे। वे प्राचीन परम्परा के विद्वान थे किन्तु उन्होने नवीनता का वरण

भी अपनी दृष्टि से किया। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। श्री रामधारी सिंह दिनकर के ये शब्द बहुत सार्थक हैं मैं जब सहल जी के व्यक्तित्व का ध्यान करता हू, मेरे मन मे एक ऐसी प्रतिमा खडी हो जाती है जो एक साथ कोमल भी है और कठोर भी जिसमे भावुकता भी है और व्यावहारिकता भी, जो भावयित्री और कारयित्री दोनो प्रतिमाओ से पूर्ण है तथा जो आकाश की सुरभि लेती हुई भी ठोस रूप से पृथ्वी पर खडी है सहल जी को देखते ही मन पर यह प्रभाव पडता है कि वह आदमी और कुछ होने के पहले ईमानदार होगा, कर्त्तव्यनिष्ठ और कार्य तत्पर होगा।

ऐसे ही विरल व्यक्तित्व डा कन्हैयालाल सहल का देहान्त 13 मार्च 1977 को बम्बई मे हुआ था। वे ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने एक संस्था से भी अधिक कार्य किया। तब वे पिलानी मे एमरेटस प्रोफेसर थे।

कृतित्व डा कन्हैयालाल सहल बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार थे वे मूलत समीक्षक थे किन्तु एक कवि एव निबंधकार के रूप मे उन्होंने अपनी अलग पहचान बनाई। राजस्थानी साहित्य का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया और अपनी शोध कृतियो से हिन्दी तथा राजस्थानी साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया। सहल प्रणीत साहित्य गुण तथा परिमाण दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। उनकी कृतियो का विवरण इस प्रकार है—

(क) काव्य—

1 प्रयोग
2 समय की सीढिया
3 क्षणो के धागे

(ख) समालोचना—

1 आलोचना के पथ पर
2 समीक्षायण
3 समीक्षाजलि
4 वाद-समीक्षा
5 विवेचन
6 कामायनी दर्शन
7 साकेत के नवम सर्ग का काव्य वैभव
8 केशव सुधा
9 मूल्याकन
10 विमर्श और व्युत्पत्ति
11 अनुसधान और आलोचना

(ग) ललित निबंध—

1 दृष्टिकोण

(घ) शोध ग्रंथ—

1 राजस्थानी-कहावतें एक अध्ययन
(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)
2 राजस्थानी कहावतें
(बंगाल हिन्दी मण्डल द्वारा पुरस्कृत)

(ङ) राजस्थानी-साहित्य—

1 राजस्थान के ऐतिहासिक उपाख्यान
2 राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद
3 राजस्थानी वीर गाथाएँ
4 राजस्थानी लोक कथाएँ
5 न हो तो कहा मन
6 राजस्थानी हरजस
7 राजस्थानी लोक कथाओं के मूल अभिप्राय
8 लोक कथाओं की कुछ प्रूढ़ियां
9 लोक कथाओं के कुछ रूढ़ तंतु
10 चाबोली
11 निहालदे सुलतान
12 राजस्थानी साहित्य की त्रिवेणी
13 द्रोपदी विनय अथवा करुण ब्रहसरी

(च) सम्पादन—

1 वीर-सतसई
2 मरु भारती (त्रैमासिक)
3 आधुनिक उद्योग और व्यवसाय की दुनिया
4 गद्य संचय
5 हिन्दी गद्य पद्य संग्रह

(छ) विविध—

1 देश विदेश की कहावतें

मूल्यांकन

डॉ कन्हैयालाल सहल प्रणीत साहित्य पर्याप्त विपुल है और गुणात्मक दृष्टि से उच्चकोटि का है। यह साहित्य एक ओर डा सहल की बहुमुखी प्रतिभा

का परिचायक है तो दूसरी ओर उनके गहन और व्यापक अध्ययन क्षेत्र की ओर भी संकेत करता। एक संवेदनशील कवि, व्यंग्यशक्ति सम्पन्न निबंधकार, प्रबुद्ध समीक्षक, मौलिक व्याख्याकार मौलिक अनुसंधाता, भाषाशास्त्री, कुशल सम्पादक आदि अनेक रूपों की ओर उनका यह साहित्य संकेत करता है। इसीलिए उनके शिष्य डॉ ओमानंद सारस्वत ने डॉ सहल को शब्द योगी संज्ञा में अभिहित किया है मूल अभिप्रायों लोककथाओं, कहावतों, राजस्थानी, अंग्रेजी संस्कृत व हिन्दी साहित्य के विविध पक्षों आदि पर विचार करने वाले शब्द योगी डॉ सहल के जीवन में लाखों शब्द इधर से उधर गुजर होंगे और उनके सम्पर्क में इनका व्यक्तित्व जिस प्रतिभा में निर्मित हुआ होगा इसकी कल्पना 'शब्द योगी' शब्द सहज ही दे देता है।' अगले पृष्ठों में इस शब्द योगी की साधना के विविध पक्षों की उपलब्धियों पर विचार किया जा रहा है।

1 प्रयोगशील कवि- 'प्रयोग' 'धरती के धान' और 'समय की सीढ़ियाँ' संकलनों की कविताओं में सहल जी एक भाव प्रवण, आस्थावान किन्तु प्रयोगशील कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं 1964 में उनका 'प्रयोग' काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ यह उनका प्रथम काव्य संग्रह था तथा इस काल तक हिन्दी साहित्य के क्षितिज पर अकविता का कुहासा छा गया था। किन्तु डा सहल कवि कर्म को एक साधक कर्म मानते हैं। वे कविता के माध्यम से मनुष्य की अदम्य शक्ति को जागरित कर इस जीवन को बहतर बनाने की कहते हैं। उन्होंने 'प्रयोग' संग्रह आमुख में स्पष्ट कहा है, "वर्तमान जन-संकुल वातावरण से हटकर किस वस्तु का चिन्तन करें? हम यह सोचें कि मनुष्य परिस्थितियों की कठपुतली नहीं, उसकी अदम्य शक्ति हैं, कर्म की शृंखला में बंधा हुआ भी वह कर्म बंधन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इसलिए उनके लिए कवि कर्म शब्दों की जुगाली मात्र नहीं है—

> कविता तो बड़ी साधना है
> तपस्या है प्रखर। (समय की सीढ़ियाँ)

डॉ सहल का कवि आज के जीवन की व्यस्तताओं विसंगतियों तथा विषमताओं से अच्छी तरह परिचित है। महानगरीय सभ्यता के विस्फोट के कारण मनुष्य के मन का सामाजिक भाव बहुत गहराई से आहत हुआ है और आदमी आदमी से अपरिचित हो गया है। इस त्रासदी का बड़ा प्रभावशाली चित्रण उनकी 'ओ नवो माणस कोण छ ?' शीर्षक कविता में हुआ है—दिन भर व्यस्त रह कर शाम को घर लौटे पिता के बारे मे ही उसका अबोध प्रश्न करता है—

'अरी माँ !
अरी माँ !!
ओ नवो मागम वाग छु !!! (प्रयाग)

जीवन की व्यस्तता ने जैसे जीवन के रस का सास लिया है क्या कि जीवन के गम्भीर प्रश्नों के बारे में चिन्तन करने के लिए किसी के पास समय ही नहीं है।

किसी को जीवन की सकुलता म
विचार करने का
चिंतन का
अवकाश ही नहीं !! (क्षणों के घाव)

किन्तु इन मारक स्थितियों का अहसास होने के बावजूद सहल का कवि आदमी के प्रति अपने गहरे विश्वास को आहत नहीं होने देता। आचार्य राम कृष्ण शुक्ल शिलीमुख ने ठीक ही लिखा था कि सहलजी की सबसे प्रभावशाली कविताएँ हैं जिसमें सहलजी ने मानव में से मानवता निकल जाने पर दुःख प्रकट किया है या आधुनिक जीवन की एक तरफ दिखायी देने वाली दयनीयता तथा दूसरी तरफ दिखायी देने वाली दयनीयता तथा दूसरी तरफ दिखायी देने वाली भयक्रूर प्रवचना और कुटिलता पर मार्मिक व्यग्य किया है' इसीलिए उनकी कविता एक क्षण की कविता नहीं है क्योंकि वे कविता में एक क्षण में ही भूत वर्तमान और भविष्य का एक सुनहरा सपना देखते है—

यह भविष्य की नींव
शक्ति का स्रोत
छोटा-सा क्षण लगता है यह
पर इसका आयाम
बड़ा विस्तृत है और गहन है
लघु क्षण का सुन्दर जीवन है। (समय की सीढ़ियाँ)

ये पक्तियाँ उस क्षणवाद का उत्तर है जो हिन्दी कविता में एक निराशा का भाव लेकर आयातित हुआ था।

किन्तु डॉ सहल आस्था और विश्वास के कवि हैं। वे अपनी कविताओं मे आधुनिक जीवन की खोखली सभ्यता पर तीखा प्रहार करते है तो सड़ी गली रूढ़ियों के अधानुकरण का निषेध भी करते हैं। वे व्यसक मयूर' कविता

मे आधुनिक सभ्यता मे लिप्त किन्तु अन्दर से घिनने आज के मनुष्य पर तीखा व्यग्य करते है तो प्राचीन किन्तु अप्रासगिक रूढियो मे लिपटे मनुष्य को भी निर्मोक मे लिपटे सप की सज्ञा से अभिहित करते है

निर्मोक के मोहने
मुक्ति मे वचित किया मुझे
केंचुली तो अजागरस्तन
वह
सप के किस काम की। (समय की सीढियाँ)

किन्तु वे अति नवीनता के आग्रह को भी मानव विकास के लिए अहित कर मानते है तो रूढियो से चिपके रहने को भी उनके लिए जीवन सतत प्रवहमान धारा है जो काफी कुछ पीछे छोडकर और नये को काट छाटकर स्वीकार करती हुई आगे बढती रहती है। मानव जीवन का यह सतत् प्रवाह ही मानव शक्ति का प्रमाण है इसीलिए वे कहते है

मैं न मात्र चालीस वष का
मुखरन मेरा अह हो रहा
मैं हूँ पाच हजार वष का। (क्षण के धाग)

वे यह भी जानते हैं कि जीवन की सतत् प्रवहमान यह धारा उन लोगो के श्रम से आगे विकास पाती है जो निरतर सघर्ष करते रहते है और अपने श्रम व पसीने से इस धारा को समृद्ध करते रहते हैं। वस्तुत श्रमिक ही नीव के पत्थर है और अगर उनके श्रम का उचित सम्मान न मिला तो वे क्रांति भी कर सकते है

निकल पडे बाहर
नीव के प्रस्तर सभी
और गिर पडा प्रासाद भी
जमीन पर। (समय की सीढिया)

सहलजी ने श्रमिक के सघषपूर्ण जीवन के महत्त्व को नीलकठ मयूर प्रतीक के माध्यम से बडे कुशल ढग से प्रस्तुत किया है—

चौदह वर्षों तक मयूर वह
केवल ककड-पत्थर खाकर
रहा धरा पर जीवित अविहल

मपर्यों म गिरत पड़ते
जिस दनकर
नभ के बादन बाल उठे थे -
'अर भाग्जे ! अरे मारिय !
तू ना सचमु'ा नीलकंठ है
तू जीता हम हारे।' (दाणों के धागे)

वस्तुत डा सहल जीवन के प्रति गहरी आस्था के कवि हैं, उ हैं जीवन क उच्चतर मूल्या मे अडिग विश्वास है, इसलिए व यह जानत हैं कि मानव जीवन का विनाश कभी नहीं हा सकता

ऊसर मानवता का मरुथल
सदा सिक्त होकर नित नूतन
हरियाली मे परिणत हागा। (क्षणा क धाग)

उन्हान अपनी कविताओं म भारतीय सस्कृति के उदात्त मूल्या म आस्था व्यक्त की है।

यद्यपि सहलजी की कविताओं का मुख्य केन्द्र मनुष्य तथा मानव जीवन है तथापि उन्हान अपनी कविताओं मे प्रकृति के मनोहारी चित्र प्रस्तुत किय हैं। कमल के सौन्दय बसत का स्फूर्तिदाय रूप, वर्षा आदि का चित्रण उनकी कविताओं मे मिलता है। राजस्थानी मरुभूमि का सौन्दय उनकी कविताओं म मुखरित हा उठा है—

मरुधर की है वधू नवेली चचल चरण धरा।
रिमझिम-रिमझिम थिरक थिरक कर
यह गाती वन झूम-झूम कर
हर खाती सरसाती अग जग नव चैतन्य भरो।

(समय की सीढ़ियाँ)

डा सहल कविता के कथ्य क प्रति जितने जागरूक हैं शिल्प के प्रति भी व उतन ही सजग हैं। व्यग्य उनके पास ऐसा हथियार है जिससे वे जीवन की विसगतिया पर प्रहार करत हैं। वे कविताओं म नय प्रयाग करत हैं किन्तु य प्रयाग नये भावो की अभिव्यक्ति के लिए नवीन छद विधान के रूप म होते हैं। डॉ नत्थनसिंह न ठीक ही लिखा है कि सहलजी की कविताओं मे सगीतात्मक अभिव्यक्ति रचना गत सयमन छद लालित्य और अभिव्यजना

की सरसता विद्यमान है' उनकी कविताओं में छंद वैविध्य है, उन्होंने मुक्त छन्द से लेकर लोकगीत तथा सहगान के रूप तक में अनेक प्रयोग किये हैं,

भाषा के संदर्भ में डा. ओमानन्द सारस्वत का यह कथन उल्लेखनीय है, डॉ साहब भाषा के आचार्य हैं। संस्कृत के विद्वान होने के कारण कवि की भाषा में संस्कृत प्रधानता या तत्सम शब्दावली कि अधिकता सर्वत्र है। भाषा की सबल अभिव्यक्ति के लिए अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, तथा बोलचाल के स्थानीय शब्द आदि सभी का उपयोग हुआ है। कहीं-कहीं पर राजस्थान की आँचलिक शब्दावली बडी ही फबती हुई है।

सभी प्रकार के मतवादों और आन्दोलनों से मुक्त रहकर डा सहल ने सम्पूर्ण आस्था के साथ अपना कवि कर्म सम्पन्न किया।

2 सफल निबंधकार कवि होने के साथ-साथ डॉ कन्हैयालाल सहल एक सफल निबंधकार थे। ललित निबंधों की कोटि में आने वाले तईस निबंध 'दृष्टिकोण' नामक पुस्तक में संकलित हैं। इन निबन्धों के बारे में सहलजी ने स्वयं लिखा है। मन की आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे अनायास ही जो यह प्रयास बन गया, उसे मैंने जान बूझ कर ही दृष्टिकोण नाम दिया है उनका यह कथन ही इन निबंधों को ललित निबंध की कोटि में ही स्थापित करता है। श्री सियाराम शरण गुप्त ने इन निबन्धों के बारे में पुस्तक के प्रारम्भ में लिखा था दो चार पृष्ठ के छोटे निबन्ध देखकर मुझ जैसे भीरू पाठक को स्वाभाविक सुख मिलता है संतोष होता है। लेखक हमारे समय का भी मूल्य जानता है। दृष्टिकोण ऐसी ही रचना है। पढने के लिए बैठकर यह नहीं लगा कि कक्षा में बैठे हैं लेखक की ओर से छुट्टी रही, जितनी देर रहना हो रहा। बीच में उठकर भी जा सकते हो और मन हो तो फिर लौटकर आ जाओ प्राध्यापक सहल को इन निबन्धों में मित्र गोष्ठी में बैठे बात करते हुए पाते हैं। गुप्तजी का यह कथन भी इस संग्रह की रचनाओं को निबन्ध की कोटि में भी रखता है।

इन निबन्धों को पढने से एक बात स्पष्ट ही सामने आती है कि डा सहल अपने विचारों को अत्यन्त सहज सरल एवं साफ ढंग से प्रस्तुत करते हैं सरलता एवं स्पष्टता उनके सारे गद्य साहित्य के स्थायी गुण हैं। इससे यह तथ्य प्रकट हो जाता है कि डा सहल पहले किसी विषय को भावना तथा बुद्धि के स्तर पर गहराई में अनुभूत करते हैं जिससे विषय पर उनका सहजाधिकार हो जाता है। इसीलिए अपने प्रतिपादन में वे अत्यन्त स्पष्ट और सहज होते हैं।

ये विषय प्रतिपादन मे अनेक उदाहरण देकर पाठक के निकट पहुच जाते हैं। पाठक उनके विषय को सरलता से ग्रहण कर लेता है।

सहल जी के ये निबंध विभिन्न विषयो पर लिखे गये हैं— 'टन-टन टन', 'बुड्ढ बच्चे', 'उतार फेंक इस कूबड को', 'प्रतिमा', 'हीनभावना', 'मानसिक स्वास्थ्य', टैक्ट 'चेतावनी', 'मन की करतूत', कालोमूपस्य कारणम' शीर्षक निबंध मनोवैज्ञानिक है क्योंकि ये सारे निबंध मानव प्रकृति तथा मानव स्वभाव की विशेषताओं को रोचक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। ये निबंध जहाँ लेखक की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का साक्ष्य देते हैं वहीं विषय प्रतिपादन की विलक्षण विधि का दिग्दर्शन भी कराते हैं, 'कालो मूपस्य कारणम' निबंध मे व्यक्ति के सस्कार निर्माण मे परिस्थितियो की महत्ता की ओर सकेत किया है।

मृत्यु तत्व, चतुवर्ग, पचकोश तथा 'सदाचार का प्रारम्भ' शीर्षक निबंधो के विषय यद्यपि दार्शनिक हैं तथापि इनमे दार्शनिक विषयो का विश्लेषण बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग मे किया गया है भाषा का चमत्कार मे शब्दो की व्युत्पत्ति पर सहल जी के सर्वथा नये विचार व्यक्त हुए हैं, इनके अतिरिक्त इस कृति के निबंध व्यावहारिक आचार पक्ष, भारतीय शिक्षा सस्कृति एवं साहित्य जैसे विषयो को आधार बना कर लिखे गये हैं। सभी निबंध अपने आप मे पूर्ण और उल्लेखनीय है क्योंकि लेखक ने विषय वस्तु का प्रतिपादन वस्तुनिष्ठ होकर किया है।

इन निबंधों मे भी सहल जी ने मनुष्य के प्रति गहरी आस्था व्यक्त की है लेखक का मानवतावादी दृष्टि वह सूत्र है जो सारे निबंधो को जोडने का काम करता है शायद इसीलिए इस सग्रह का नाम दृष्टिकोण रखा गया है। इन निबंधो मे लेखक मानवतावाद की कोई शास्त्रीय व्याख्या नहीं करता प्रत्युत मानव प्रेम की जीवन मे आवश्यकता पर बल देता है। वह मानव शोषण का भी विरोध करता है और ऐसी मानवेतर सत्ता का भी जो मनुष्य को मनुष्य-पथ से विमुख करती है। वह मानव प्रेम को भारतीय सस्कृति का मूल मत्र मानता है तभी तो कहता है—

भारत भी सभ्यता की ऊपरी चकाचौंध के फेर मे न पडकर सस्कृति की ओर उन्मुख होगा, तभी वह मानव धर्म का सच्चा आदर्श विश्व के सामने रख सकेगा।

(दृष्टिकोण पृ 80)

इन निबंधो को पढ़ने पर एक तथ्य और सामने आता है— सहलजी की

बहुलता इन निबंधो से स्पष्ट है। लेखक को दर्शन मनोविज्ञान समाजशास्त्र के साथ हिन्दी संस्कृत, राजस्थानी अंग्रेजी भाषाओं के साहित्य की गहरी जानकारी है और इन निबंधो मे लखक न अपने ज्ञान का सार्थक प्रयोग किया है।

निबंधकार के लिए यह आवश्यक है कि वह विषय का प्रतिपादन व्यग्य के साथ कर अन्यथा निबंध पाठक को बांध नही पाएगा सहलजी अपनी कविताओं मे तीखा व्यग्य करते है पर इन निबंधो म उनकी व्यग्य दृष्टि की प्रखरता सामने आती है। किन्तु सहल जी का व्यग्य पाठक को एक सकारात्मक दृष्टि प्रदान करता है यही व्यग्य की सार्थकता है, उनके व्यग्य का तीखापन इन पंक्तियो म देखा जा सकता है—

"मुझे तो ऐसा लगता है जैसे वर्षों की संख्या से अवस्था का कोई अनिवार्य सम्बन्ध नही। यदि एसा होता तो क्यो एक 75 वर्ष का बुड्ढा भी अपने को युवा अनुभव करता और क्यो 25 30 का युवक वृद्धत्व का बोझ अपनी पीठ पर लादकर युवावस्था की कमर तोड डालता। (पृ 12)

× × × × ×

'बुड्ढी बच्चियाँ हो अथवा बुड्ढे बच्चे दोनो ही भयावह है और इनसे तो भगवान बचाए। (पृ 10)

× × × × ×

'मेरे एक मित्र हैं जिनमे कष्ट झेलने का माद्दा है ही नही। जरासी कही चोट आजाए तो दूसरो को दिखाते फिरेंगे। कही खरोंच लग जाए तो भी आप चाहेंगे कि दूसरे उनके साथ सहानुभूति प्रदर्शित करें। अंगुली अच्छी हो गयी, तब भी आप उसके कुछ दिनो तक केवल इसलिए पट्टी बाँधे रहे कि एसे अभिनय से आपको अपने मित्रो की सहानुभूति अनायास मिल जाएगी।
(पृ 5)

× × × × ×

वात प्रकृति वाला मनुष्य हवा से बात करता है, हवा बाधता है, इतना ही नही वह हवा से लडता भी है।

'दृष्टिकोण' के निबंधो म व्यग्य के ये तीर भरे पडे हैं। सहल जी की व्यग्य क्षमता हमे उनके समीक्षात्मक निबंधो म भी देखने को मिली है। 'मूल्यांकन

गद्य का साहित्य मूल्यांकन के नये मान निबंध में व्यंग्योक्तियों का अच्छा प्रयोग हुआ है।

ध्यान देने की बात यह है कि सहल जी का व्यंग्य बहुत शिष्ट और शालीन है वे न तो कटु होते हैं और विध्वंसक ही। इसीलिए उनके व्यंग्य में एक विस्तृति मिलती है साथ में सरलता और बोधगम्यता भी, इन्हीं गुणों ने उनके निबंधों को गम्भीरता प्रदान की है।

सहलजी के निबंधों का सबसे प्रमुख गुण है- साहित्यिकता वे किसी भी विषय पर निबंध लिखें अपनी आत्मीयता और सरसता से उसे साहित्यिक बनाकर प्रस्तुत करते हैं इसका कारण यह है कि इन निबंधों में सहल जी का व्यक्तित्व सर्वत्र प्रकट हुआ है। निबंधों को पढ़ते समय ऐसा लगता है जैसे एक जिन्दादिल मजेदार व्यक्ति अपने मनोरंजक अनुभव सुना रहा हो।

निबंधों की भाषा सहज, सरल और बोलचाल की है। भाषा पर सहल जी का पूर्ण अधिकार है अतः न केवल भाव और विचार के अनुरूप उन्होंने शब्द चयन किया प्रत्युत आवश्यकतानुसार नये शब्दों को गढ़ा भी है- बुढ़ाना जिदना सठियाना पोपला जाना आदि ऐसे ही शब्द हैं। उनकी भाषा में एक ओर संस्कृत तथा अंग्रेजी के प्रसिद्ध उद्धरणों का उपयोग हुआ है तो ठेठ आंचलिक शब्दों और मुहावरों का सार्थक उपयोग भी हुआ है। पर भाषा न तो कहीं दुरूह होती है और न अबोधगम्य ही। भाषा पर लेखक का इतना अधिकार है कि उसे भाषा प्रयोग के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता प्रत्युत विचारों के अनुरूप भाषा स्वतः ही आती चली जाती है।

भले ही सहल जी के ललित निबंधों की संख्या कम है किन्तु श्रेष्ठता की दृष्टि से ये हिन्दी साहित्य में अपना अलग स्थान रखते हैं।

3 प्रबुद्ध समीक्षक डा कन्हैयालाल सहल के कृतित्व का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है उनका समीक्षक पक्ष डा नगेन्द्र ने भी स्वीकार किया है कि सहल जी के कृतित्व के तीन रूप अत्यंत मुखर हैं अनुसंधाता निबंधकार और आलोचक डा सहल वृत्ति से अध्यापक हैं, फलस्वरूप उनकी आलोचना शैली में क्रम बद्धता और तत्वग्राहिता अनायास देखी जा सकती है। डा पद्मसिंह शर्मा कमलेश ने स्वीकार किया है कि डा सहल प रामचन्द्र शुक्ल बाबू गुलाबराय तथा डा नगेन्द्र की परम्परा के समीक्षक हैं। आचार्य विनयमोहन शर्मा के अनुसार 'डॉ कन्हैयालाल सहल हिन्दी के ख्यातिलब्ध समीक्षक और

चिनत है। उनका अध्ययन क्षेत्र शिष्ट साहित्य की विशेष विधा तक सीमित नहीं है उन्होंने लोक साहित्य, दर्शन, भाषाशास्त्र आदि विषयों पर भी अध्ययन किया है।'

यद्यपि डॉ कन्हैयालाल सहल आचार्य रामचन्द्र शुक्ल डॉ श्यामसुन्दर दास बाबू गुलाबराय डा नगेन्द्र प्रभृति रसवादी समीक्षकों की परम्परा मे आते है तथापि उन्होंने अपने आपको परम्परागत दुराग्रहो से मुक्त रखा है। साहित्य की पुरानी से पुरानी और नयी से नयी विधा पर अधिकारपूर्वक लिखा है। किन्तु इससे एक नुक्सान भी हुआ कि डॉ सहल साहित्य के विभिन्न विषयों पर स्फुट रूप से लिखते रहे परिणाम स्वरूप वे एक युग निर्माता आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित नही हुए। किन्तु समीक्षा क्षेत्र मे उन्होंने जो कुछ लिखा वह उनके गहन अध्ययन, तलस्पर्शी विवेचन और मौलिक निष्कर्षों के कारण अपना अलग महत्व रखता है।

डॉ सहल प्रणीत आलोचना साहित्य अत्यंत विपुल और विविध है। उन्होंने जिन क्षेत्रों को अपनी समीक्षा की परिधि मे रखा उन्हें मोटे तौर पर निम्नांकित वर्गों मे रखा जा सकता है —

[I] **रचनाकार केन्द्रित समीक्षा**– कबीर, तुलसी सूरदास केशव बिहारी जगन्नाथ दास रत्नाकर, प्रसाद पंत महादेवी, नगेन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर कालरिज आदि पर लिखे गये समीक्षात्मक लेख।

[II] **रचना केन्द्रित समीक्षा** कामायनी गुंजन लहर स्कंदगुप्त, ध्रुव स्वामिनी गबन, साकेत, राम की शक्ति पूजा आदि कृतियों पर लिखे गये समीक्षात्मक निबंध।

[III] **काव्य शास्त्रीय समीक्षा** रस सिद्धान्त, अलंकारशास्त्र काव्य में उदात्त तत्व लांजाइनस के सिद्धान्त टी एस एलियट के वस्तु निष्ठ प्रतिरूपता सिद्धान्त के सदर्भ मे रस, ध्वनि सिद्धान्तों की समानता ट्रेजिडी सम्बंधी सिद्धान्त आदि से सम्बंधित लिखे गये निबंध।

[IV] **विभिन्न वादो से सम्बद्ध समीक्षा**– रहस्यवाद, छायावाद नियतिवाद कलावादी सम्प्रदाय, नई आलोचना आलोचना के नये मानो आदि से सम्बद्ध निबंध।

[V] **विभिन्न विधाओ व काव्य रूपो से सम्बद्ध समीक्षा**–

नाटर, सकलन त्रय, हिन्दी एकाकी, नई कविता गीतिकाव्य साहित्य म स्वच्छन्दता वाद आदि से सम्बद्ध निबध।

[vi] भाषा वैज्ञानिक समीक्षा– सादृश्य सिद्धान्त, भेदीकरण का नियम, व्युत्पत्तिपरक विवेचन तथा राजस्थानी भाषा से सम्बद्ध निबध।

[vii] शोध पूर्ण-समीक्षा- राजस्थानी कहावते एक अध्ययन, लोक-कथाओं के कुछ रूढ़ तत्व आदि ग्रथ।

[viii] व्याख्यात्मक समीक्षा मावत के नवमसर्ग का काव्य वैभव कामायनी दर्शन (डॉ विजयेन्द्र स्नातक की सहकारिता म) वीर सतसई (पतराम गौड़ की सहकारिता म) आदि कृतिया।

[ix] मनोवैज्ञानिक समीक्षा– आलोचना और मनोविश्लेषण, अलकार और मनोविज्ञान, मानसिक स्वास्थ्य और गीता आदि निबध।

[x] शास्त्रीय समीक्षा– सादृश्य का सिद्धान्त, द्वन्द्वात्मक भौतिक और प्रगतिवाद स्वभावोक्ति और अलकारत्व, औचित्य सिद्धान्त काव्य की आत्मा, कला का त्रिकोण जैसे निबध।

उक्त वर्गीकरण तो मोटे तौर पर किया गया है किन्तु यह वर्गीकरण इस तथ्य की ओर सकेत करता है कि डॉ महल का समीक्षा कर्म बहुत ही व्यापकता लिए है तथा उनके अध्ययन क्षेत्र म भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य के सिद्धान्त और कृतिया आती है।

यद्यपि डॉ महल रसवादी आलोचकों की श्रेणी म आते हैं तथापि उन्होने रस सिद्धान्त के अतिरिक्त औचित्य सिद्धान्त अलकार और मनोविज्ञान कुन्तक का काव्य स्वभावोक्ति और अलकारत्व आदि भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धान्तो पर गम्भीरता पूर्वक लिखा। साथ ही उन्होने पाश्चात्य काव्य शास्त्र का अध्ययन कर काव्य म विराट भावना कालरिज का कल्पना सिद्धान्त लाजीनस का भावोत्कर्ष 'कला का त्रिकोण' शैली का व्यक्तित्व सकलन त्रय वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता सवेदना का हस्वाभास जैसे पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तो पर मौलिक ढग से लिखा। इतना ही नहीं उन्होंने पाश्चात्य सिद्धान्तो की तुलना भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धान्तो से की– रस सिद्धान्त और कीथ 'रस प्रक्रिया का त्रिकोण और पाश्चात्य समीक्षक' ट्रेजिडी म अह का विगलन वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता और रस सिद्धान्त, वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता और ध्वनि सिद्धान्त जसे

निबंध डॉ सहल की समन्वय दृष्टि का परिचय देते हैं क्योंकि ये भारतीय एव पाश्चात्य सिद्धातो के बीच सामजस्य तथा एक वाक्यता स्थापित करने का प्रयास करते हैं ये पहले आलोचक हैं जो टी एस ऐलियट के वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपना (Objective Correlative) सिद्धान्त का विश्लेषण रससिद्धान्त और ध्वनि सिद्धान्त के साथ रखकर करते हैं और उनके बीच समानता के सूत्र प्रतिपादित करते हैं।

रस सिद्धान्त पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स लेकर डा नगेन्द्र तक डा० छैल बिहारी राकेश, डॉ० भोलाशकर व्यास, डा आनन्द प्रकाश दीक्षित डा० रमाशकर तिवारी आदि ने पर्याप्त गम्भीरता से लिखा डॉ० सहल के रस सम्बधी विभिन्न निबन्धो से स्पष्ट है कि रस के सम्बन्ध म उनकी जिज्ञासाए भी मौलिक एव महत्वपूर्ण रही है। उनकी विशेषता यह है कि उन्होने रस सिद्धान्त की सैद्धान्तिक व्याख्या के साथ विभिन्न कृतियो के सन्दर्भ मे उसकी व्यावहारिक व्याख्या की है तथा पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तो के साथ रख कर रस सिद्धान्त की व्याख्या की है। जसे वे अपनी समीक्षायण पुस्तक म रवीन्द्र के सदभ म कहते हैं ' जो वस्तु हमारे मन पर जबरदस्त छाप छोड जाती है, उसका प्रभाव भी बडा प्रबल होता है। जिस वस्तु का हम विशेष रूप म अनुभव करत है उसके द्वारा हम अपने आपको ही प्राप्त करत हैं। यह आत्म सप्राप्ति ही आनन्द है ' (पृ० 76) रस सिद्धान्त पर डा० सहल के विवेचन के सन्दर्भ मे डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित का यह कथन उल्लेख्य है रस सिद्धांत के सर्वांग का स्पर्श न करते हुए भी डा० सहल न जिन प्रश्नो पर विचार किया है, वे महत्व पूर्ण ही नही है, बल्कि उनका विचार भी डा सहल ने गम्भीर अध्ययन और चिन्तन के साथ किया है। टी० एस० एलियट के वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपना सिद्धात के साथ रस सिद्धान्त का सामजस्य बिठान का प्रयास डा० सहल का सर्वथा नवीन व मौलिक प्रयास है।

डॉ० सहल की आलोचना पद्धति की एक बहुत बडी विशेषता उनकी तुलनात्मक दृष्टि है। वे भारतीय एव पाश्चात्य काव्य शास्त्री सिद्धातो की तुलनात्मक किन्तु तार्किक व्याख्या करत हैं। वे कबीर तथा वाल्मीकि की कृतियो का विवेचन पाश्चात्य काव्य शास्त्र के माध्यम से करत हैं तो शेक्सपीयर के नाटको का विश्लेषण भारतीय साहित्य शास्त्र की दृष्टि स करत है। व तुलसी की कवितावली के 'दूलह श्री रघुनाथ बने सवये की समीक्षा करते हुए उस पर objectire correlative का सिद्धान्त लागू करते हैं। उनकी यह तुलनात्मक दृष्टि उनके सारे आलोचना साहित्य म विद्यमान है।

डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है, "डा० महल वृत्ति से ग्रध्यापक हैं, फलस्वरूप उनकी ग्रालोचना शैली मे क्रमबद्धता ग्रौर तत्व ग्राहिता ग्रनायास ही देखी जा सकती है। क्रमबद्धता ग्रौर तत्व ग्रहिता उनकी व्याख्यात्मक ग्रालोचनाग्रो मे ग्रपने उत्कर्ष पर देखी जा सकती है। "साकेत के नवमसर्ग का काव्य वैभव व्याख्यात्मक ग्रालोचना का एक ग्रनूठा उदाहरण है जिसका ग्रभूतपूर्व स्वागत हिन्दी साहित्य मे हुग्रा है। यह कृति 'साकेत' के नवम सर्ग के छदो की व्याख्या मात्र नही है, प्रत्युत डॉ० सहल नवमसर्ग के छदो की व्याख्या करते समय न जाने किन किन विषयो की यात्रा करते हैं। इस कृति पर ग्रपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए स्वयं मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा था, "मुझे ऐसा लगता है सहृदय रसिक उनसे उतना ग्रहण कर लेते है जिसकी कल्पना कवि भी नही कर सकता।

"मूल ग्रवधि सुध प्रिय से' वाले पद्य मे 'ग्राग्रो' ग्रौर जाग्रो से ग्रापन जो सख्या की उद्‌भावना की है, वह मेरे मन मे नही ग्राई थी।" साकेत के नवम सर्ग का काव्य-वैभव, (पृ 157)। डा० विजयेन्द्र स्नातक की सहकारिता मे लिखी गयी 'कामायनी दर्शन तथा पतराम गौड की सहकारिता मे लिखी गयी वीर-सतसई कृतियाँ व्याख्यात्मक ग्रालोचना की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

डा० महल का शास्त्रीय समीक्षा के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण योगदान रहा तथा उनके समीक्षा सिद्धान्त उनकी व्यापक समीक्षा दृष्टि का परिचय देते हैं। वे किसी वाद से चिपके हुए नहीं हैं तथा किसी ग्राग्रह से पीडित भी नही है। वे व्यापक दृष्टि से साहित्य पर विचार करते हैं ग्रौर ग्रपने सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि वे साहित्य की व्याख्या जीवन को ग्रागे रखकर करने पर बल देते हैं। नीचे डा० सहल के कतिपय समीक्षा सिद्धान्त दिए जा रहे हैं जिनसे उनकी व्यापक समीक्षा दृष्टि का परिचय मिल जाएगा—

'वाद ग्रथवा दार्शनिक विचार साहित्यकार के जीवन-दर्शन का ग्रभिन्न ग्रग होकर ही साहित्य मे स्थान पाने योग्य है ग्रन्यथा नहीं। जीवन से ही सिद्धान्त उद्‌भूत हो सिद्धान्तो से जीवन नही।

(मूल्याकन- पृ० 3–4)

× × × ×

साहित्य का मूल्याकन केवल परम्परागत शास्त्रीय नियमो के ग्राधार पर नहीं किया जा सकता। साहित्य-सृजना नियमो का परिणाम नही है वस्तुत साहित्यकार का कृतित्व ही नियमो को जन्म देता है उसका समग्र साहित्यिक

व्यक्तित्व ही मूल्याकन के नये मान भी निर्धारित करता है।'

(मूल्याकन पृ० 2)

× × × ×

" साहित्य के मूल्याकन मे परम्परा का क्या स्थान है अतीत का अपने से सवथा विच्छिन्न करके हम वत्तमान म नही जीते। परम्परा का विवेक पूण त्याग और ग्रहण ही हमे वतमान मे गतिशील बनाता है जिसके परिणाम स्वरूप उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना प्रकट होने लगती ह।

(मूल्यांकन– पृ 5)

× × × ×

काव्य है ही आत्मा की सकल्पात्मक अनुभूति " (विवेचन–पृ० 174)

× × × ×

भावो का स्वत नि सृत उदगार ही तो सच्ची कविता है।'

(विमर्श और व्युत्पत्ति–पृ०173)

× × × ×

वस्तुत भाव और अभिव्यक्ति दोनो का सम्मिलित चारुत्व ही काव्य सौन्दय का प्रमुख हेतु है।'

(आलोचना के पथ पर उपक्रम– पृ० ख)

× × × ×

"कल्पना के साहचय एव सहयोग से कागज पर उतरा हुआ हृदय ही तो कविता है। (विवेचन पृ० 55)

× × × ×

जब तक किसी कविता से हमारी हृदत्री झकृत न हो उठे, जब तक कवितागत भाव-व्यजन के साथ हमारा हृदय भी सामा य भावभूमि पर न आ जाए तब तक वास्तव मे देखा जाए तो कविता सरस नही कही जा सकती।'

(विवेचन– पृ० 54)

× × × ×

'भाषा और भाव का यदि सामजस्य हो हृदय और मस्तिष्क, दर्शन और काव्य यदि कधे स कधा मिलाकर चल सकते हो तो एसा गीति काव्य अवश्य सफल कहा जाएगा।'

(आलोचना क पथ पर- पृ० 94)

' वस्तुत कला के मूल्य दो तरह के होते हैं— (1) कलात्मक, तथा (2) कलेतर। कलात्मक मूल्यों का सम्बन्ध मनोरथ और सुन्दर अभिव्यक्ति में होता है जबकि कलेतर मूल्य लोक संग्रह तथा लोक-कल्याण से सम्बद्ध होते हैं। कलात्मक मूल्य कला को सौन्दर्य प्रदान करते हैं जब कि कलेतर मूल्य कला की व्यापकता और उपयोगिता में योग देते हैं। उक्त दोनों प्रकार के मूल्य-समुच्चय में ही कला को अमरता प्राप्त होती है।

(विमर्श और व्युत्पत्ति पृ० 12)

× × × ×

बाह्य जगत में जो कुछ सुन्दर है कवि उसे अपने अन्तर्जगत में बसा लेना चाहता है किन्तु साथ ही साथ उसके अन्तर्जगत में जो कुछ है उसे वह बहिर्जगत को दे देना चाहता है। बाहर को अन्दर करना और अन्दर को बाहर करना – वास्तव में कला का मूल तो इसी सूत्र में निहित है।

(समीक्षायण पृ० 127)

× × × ×

' जीवन की यथार्थ अनुकृति कला में सम्भव नहीं है। जीवन की अनुकृति का व्यापक अर्थ यही है कि जो वस्तु काव्य में गृहीत होगी वह जीवन के बाहर की नहीं होगी।' (समीक्षायण- पृ० 10)

× × × ×

साधारणीकरण ऐसे आवेश के क्षणों में चिरन्तन साहित्य की सृष्टि होती है। (समीक्षायण, पृ० 96)

× × × ×

काव्य-सृष्टि के उदात्तक्षणों में कवि राग-द्वेष की भावनाओं से ऊपर उठा रहता है। (विमर्श और व्युत्पत्ति —पृ० 2)

× × × ×

नाटक के किसी एक पात्र अथवा प्रत्येक पात्र के साथ यदि नाटककार अपना तादात्म्य स्थापित करले और दूसरे पात्रों को यदि वह अपने हृदय की सहानुभूति न दे तो वह नाटककार की दुर्बलता ही समझिए। नाटककार में जिस अनासक्त दृष्टि की आवश्यकता होती है उसका अभाव होने पर प्रचारात्मकता उपदेशात्मकता दार्शनिकता सिद्धान्तप्रियता, आदि के समावेश से नाटकीय रचना तन्त्र त्रुटिपूर्ण हो उठता है। (मूल्यांकन—पृ० 22)

"निबन्ध सरस शैली मे अभिव्यक्त किया हुआ लेखक का निजी दृष्टिकोण है जिसमे आकार लघुता के साथ-साथ गद्य की कलात्मकता के भी दर्शन होते हैं।' (मूल्यांकन— पृ० 114)

× × × ×

शैली म प्रभ विष्णुता और सजीवता इसी आत्मतत्व के कारण आती है। और आत्मतत्व स्वानुभूति के बिना नही आ पाता। जहा स्वानुभूति है वहां भव्य शब्द विन्यास भी अपने आप आ जाता है।

(समीक्षायण— पृ 124)

× × × ×

'रस दशा तन्मयता की सात्विक अवस्था है जिसके विशेष स्पष्टीकरण के लिए सांख्य दर्शन का आश्रय ग्रहण करना होगा। रस की दशा तन्मयता का वह पारावार है, जिसमे न जाने कितने सत असत, सुख तथा दुख डूब रहते है। (विवेचन—पृ० 131)

× × × ×

"वास्तव में सभी रस सुखात्मक है और इसका मूल कारण है भाव मग्नता। (आलोचना के पथ पर— पृ०47)

× × × ×

"दु खात्मक नाटको म करुणा का भाव जागृत होने से आत्म प्रसार का अवसर मिल जाता है और आत्मप्रसार ही आनन्द का मूल कारण है।

(विवचन पृ 45)

× × × ×

'त्रासदी मे सहानुभूति के कारण आत्म विस्तार होता है, नाटक के औदात्मपूर्ण शील से मानव के महत्व की तीव्रानुभूति होती है जिसके कारण हमे सतोष अथवा सुख की प्रतीति हुए बिना नही रहती।

(विमर्श और व्युत्पत्ति पृ 2001)

× × × ×

"जहां तक मैं समझता हू ट्रजिडी मे आनन्द का मूल कारण है 'अह का विगलन दुख की लोकानुभूति कराए बिना ट्रेजिडी हमे दुख उत्पन्न होने वाला लाभ पहुंचा देती है और वह है 'अह के विगलन' द्वारा आत्मोपलब्धि की झलक अह के विगलन से मनुष्य को आत्म स्वरूप

और स्वभाव अथवा आत्म भाव की उपलब्धि होता है। किसी को उसका छाया स्वरूप मिल जाए तो निश्चय ही उसे अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होगी।'

(विमर्श और व्युत्पत्ति पृ 16 17 8)

× × × ×

'यदि विचार कर देखा जाए तो रस प्रक्रिया की तीन स्थितियाँ हमारे सामने स्पष्ट है। पहली स्थिति अभिधा अथवा वर्ण्य विषय मे सन्निहित है, किन्तु निरी अभिधेय वस्तु काव्य का रूप धारण नहीं कर सकती। अभिधेय को आस्वाद्य बनाने के लिए कवि अथवा नाटककार को रस प्रक्रिया की दूसरी स्थिति अर्थात कल्पना का सहारा लेना पडता है जिसके द्वारा रस अभिव्यक्त अथवा व्यजित होता है। व्यजना को तीसरी स्थिति समझिए।'

(विमर्श और व्युत्पत्ति पृ 3)

उपर तो कतिपय उदाहरण दिए गये है। डा महल प्रणीत समीक्षात्मक साहित्य मौलिक उदभावनाओ से भरा पडा है। तथापि समीक्षक के रूप मे डा महल की समीक्षात्मक उपलब्धियो को सक्षेप म इस प्रकार रेखाकित कर सकते हैं —

—हिन्दी म अपने ढग की व्याख्यात्मक समीक्षा या समीक्षात्मक व्याख्या का सूत्रपात करने का श्रेय डॉ सहल को है। साकेत के नवम सर्ग का काव्य वैभव तथा कामायनी दर्शन (डॉ विजयेन्द्र स्नातक की सहकारिता म) कृतिया इसका प्रमाण हैं।

—डा सहल ने सवप्रथम प्रसाद-साहित्य के सदभ म नियतिवाद का भारतीय एव पाश्चात्य दृष्टियो से प्रचुरता एव विशदता से विवेचन किया है।

—हिन्दी साहित्य मे उदात्त भावना (Sublimity) पर सवप्रथम लेख डा सहल ने लिखा जिससे अन्य विद्वानो का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ।

'करुण रस की सुखात्मकता एव ट्रजिडी के सुख पर अनेक लेख लिखकर उन्होने अपना नूतन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

—रस सिद्धान्त पर डा सहल ने अपने दृष्टिकोण से विचार किया है। इस क्षेत्र म उनकी भावतत्त्व बनाम कल्पना तथा 'रस अभिव्यक्त या अनुभूत नामक नवीन उदभावनाएँ अपना विशेष महत्त्व रखती हैं।

—डॉ सहल ने टी एस एलियट के 'वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता (Objective Correlative) सिद्धान्त की विवेचना भारतीय रस सिद्धान्त ध्वनि सिद्धान्त आदि के सदर्भ म मौलिक ढग से की है।

—हिन्दी मे वक्रोक्ति पर सम्भवत सर्वप्रथम लेख डा सहल न बगला स अनुवाद करके विद्वानो का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया।

—वियोग म वस्तियाँ कोमल हो जाती हैं- जैसे तथ्या का उद्घाटन करत हुए गुप्त जी के वियोग वणन के वैशिष्ट्य का विवेचन सव प्रथम डा सहल न ही किया है।

ये तो कुछ सकेत मात्र है, परन्तु डा सहल का शायद ही कोई ऐसा समीक्षात्मक निबध हो जिसमे उन्होन अपना नूतन दृष्टिकोण प्रस्तुत न किया हो।

समीक्षक डा कन्हैयालाल सहल के वारे म डा विजयेन्द्र स्नातक न वडी आत्मीयता के साथ लिखा था— मुझे भली भाति स्मरण है कि स्वतन्त्रता से पूव जिन मनीषी समीक्षको की हिन्दी म मौलिक चितक क रूप म गणना होती थी डॉ सहल भी उनम अन्यतम थे। डा सहल शास्त्रवेत्ता पडित है परम्पराओ का उन्ह पूर्ण ज्ञान है, किन्तु आश्चय यह है कि शास्त्र की जडता न उन्ह कही रच मात्र भी जकडा नही है। उनकी नई पुरानी सभी समीक्षाओ मे युक्ति, तक, प्रमाण का परिपोप है। प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानो के मत उनकी समीक्षाओ म सहज रूप मे गहीत अवश्य हुए हैं किन्तु केवल वैदुष्य प्रदशन की स्पृहा के कारण उनको उदधृत नही किया गया है। सस्कृत और अंग्रेजी के विद्वान होने के कारण इन दोनो भाषाओ के जो उद्धरण उनकी समीक्षा म अनायास आ जाते हैं उनका भार उठाने की सामर्थ्य सहल जी म है इसलिए वे समस्त उद्धरण सहज और शोभन प्रतीत होत ह।

(४) गम्भीर चिन्तक— डा० कन्हैयालाल सहल कोरे साहित्यकार नही थे, प्रत्युत गहन चिन्तक थे। इस ओर श्री कलानाथ शास्त्री न सकेत किया है, "कक्षा मे पढाते समय किसी बाद्य ग्रथ मे किसी विषय विशेष की जिज्ञासा क दिमाग मे कौंध जाने पर उस पर चिन्तन आरम्भ कर देने की कुछ घटनाएँ उनके जीवन म घटी हो।' साथ ही उनकी आस्तिक भावना और दर्शन क प्रति उनकी गहरी अभिरुचि ने भी उन्ह चिन्तक बनाने म सहायता की। प्रत्येक विद्वान अपने जीवन मे अनेक जिज्ञासाओ का शमन करन के लिए निष्ठापूवक विभिन्न विषयो के अध्ययन की ओर सक्रिय होता है। डा० सहल के जिज्ञासु मन ने उन्ह दर्शन और मनो विज्ञान क अध्ययन के लिए विवश किया।

दृष्टिकोण' संग्रह में संकलित निबन्ध 'पढ़ते ही स्पष्ट हो जाता है कि वैयक्तिक अनुभव, एकान्त चिन्तन और जीवन की कड़वी मीठी छोटी छोटी घटनाओं से उद्भूत हुए हैं।' (*श्री कलानाथ शास्त्री*) इन *निबंधों को पढ़ते* हुए हमें लगता है कि उनका चिंतकमन जीवन के सागर में डूबकर मोती पाने के लिए व्याकुल है। यही निबंध यह भी स्पष्ट करते हैं कि डॉ० सहल को मनोविज्ञान का गहरा ज्ञान ही नहीं मानव मन की गहराइयों की बारीक जानकारी थी।

शायद काव्य शास्त्र का अध्ययन करते समय उन्हें अद्वैत वेदान्त, न्याय दर्शन, मार्क्सवादी दर्शन आदि का विवेचन करना पड़ा। उन्होंने इन विभिन्न दर्शनों की व्याख्या साहित्य के संदर्भ में तो की ही साथ ही उन्होंने कुछ ऐसे भी निबंध लिखे जो शुद्ध दार्शनिक और चिन्तन परक हैं। गीता के दर्शन को लेकर, सत और असत के विवेक को लेकर, मृत्यु तत्व को लेकर, सभ्यता और संस्कृति को लेकर, उपनिषदों को लेकर उन्होंने स्वतन्त्र किन्तु सारगर्भित निबंध लिखे। 'सांख्य दर्शन की आध्यात्मिकता' 'योग और वेदान्त' 'मानसिक स्वास्थ्य और गीता' 'अर्जुन का विषादयोग एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' नियति का स्वरूप 'द्वन्द्ववादिक स्वरूप' आदि निबंध शुद्ध दार्शनिक निबंध हैं। मानसिक स्वास्थ्य और गीता शीर्षक निबंध में वे कहते हैं— "आधुनिक मनोविज्ञान मानसिक स्वास्थ्य के लिए संतुलन, साम्य, समत्व, आनुरूप्य आदि को आवश्यक समझता है। गीता में ये शब्द भाव रत्नों की भांति बिखरे पड़े हैं। योग और वेदान्त शीर्षक निबंध में उन्होंने योग की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए पाश्चात्य दर्शन के साथ उसकी तुलना की है।

संस्कृति से रति बढ़ती है [illegible] भावात्मक एकता कुलाचार और शिक्षक बच्चों की समस्याएँ महर्षियों की निर्वाण स्थली पर्वतराज हिमालय नवीन नैतिक मूल्यों का पुनरीक्षण आदि निबंध इस तथ्य के प्रमाण हैं कि डॉ० सहल की मनीषा दार्शनिक विषयों पर ही गम्भीर चिन्तन नहीं करती प्रत्युत जीवन जगत की व्यावहारिक समस्याओं पर भी बराबर मनन करती है। ये सारे निबंध उनके चिन्तन क्षितिज के बहुआयामी रूप की स्पष्ट पहचान के लिए पर्याप्त हैं। यहाँ योग और वेदान्त जैसे दार्शनिक विषय और कहीं बच्चों की समस्याएँ जैसा सामान्य व्यावहारिक किन्तु महत्वपूर्ण विषय [illegible] है जिनके बीच डॉ० सहल का चिन्तन बराबर दौड़ता रहा और दर्शन एवं जीवन के [illegible] के साथ जुड़ता रहा। ये निबंध डॉ० सहल को [illegible] गम्भीर चिन्तक सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं।

5 भाषा-शास्त्री- डा कन्हैयालाल सहल कवि, निबंधकार तथा समालोचक होने के साथ साथ प्रसिद्ध भाषा शास्त्री थे त्रैमासिक मरुभारती का 'शब्द चर्चा' स्तम्भ इस तथ्य का प्रमाण है कि उन्हें भाषा विज्ञान की गहरी जानकारी थी क्योंकि इस स्तम्भ में वे बराबर विभिन्न शब्दों की व्युत्पत्तियों तथा उनके अर्थ विकास पर वैज्ञानिक दृष्टि से चर्चा कराते रहे। वे किसी शब्द की जीवन यात्रा की तह तक पहुँचने की चेष्टा करते थे। उन्होंने राजस्थानी कहावतों पर अपना शोध कार्य किया जो अपने आप में अलग प्रकार का कार्य है। कहावत शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर ही उन्होंने मौलाना आजाद से पत्र व्यवहार किया तथा इस सम्बन्ध में वासुदेवशरण अग्रवाल सिद्धेश्वर वर्मा महावीर प्रसाद पोद्दार सुनीतिकुमार चटर्जी हरिवल्लभ भायाजी, मुनि जिन विजय बाबूराम सक्सेना आदि के मतों का प्रस्तुत करते हुए अपना मत प्रकट किया।

बनना में 'आव' प्रत्यय जोड़ने पर जैसे बनाव बनता है उसी प्रकार कहना (कह) में 'आव' प्रत्यय जोड़ने पर कहाव बन सकता है। अरबी में जिस प्रकार त प्रत्यय जोड़ने पर मुसाफिरत और मुसाहबत शब्द बनते हैं उसी प्रकार कहाव के आगे त प्रत्यय लगने से कहावत बन सकता है जिसका अर्थ है कहने की दशा, कही हुई स्थिति अर्थात उक्ति।

(राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन पृ 4)

राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से एक अनूठा ग्रंथ है क्योंकि इस ग्रंथ में एक एक कहावत अध्ययन विश्व की विभिन्न भाषाओं की कहावतों से तुलना करते हुए किया गया है।

उनके भाषा के भेदक तत्व 'डिंगल' के सम्बन्ध सूचक परसर्ग 'यूरोपीय भाषाओं और भारत की आर्यभाषाओं का अभिन्न सम्बन्ध' आदि निबंध भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं भाषा के भेदक तत्व निबंध में उनकी स्थापना है कि भाषा निर्णायक तत्व शब्द नहीं अपितु शब्द की पदमयी अवस्था है, जिसमें विभक्ति प्रत्यय परसर्ग और क्रियारूप प्रमुख हैं।

प्रसिद्ध भाषा शास्त्री डा कैलाशचन्द्र भाटिया के अनुसार डॉ सहल ने बोली विज्ञान के क्षेत्र में भी शोध परक लेख लिखे हैं जो मेरी दृष्टि में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। डा सहल के परक बोली विज्ञान की सूक्ष्म दृष्टि विद्यमान है,' जयपुर क्षेत्र की बोलियाँ तथा आबू सिरोही क्षेत्र की भाषा-शीर्षक लेख इस दृष्टि से अपना महत्व रखते हैं।

डॉ० सहल ने व्युत्पत्ति के क्षेत्र म उल्लेखनीय काय किया है। शब्दो की व्युत्पत्तियो को लेकर वे 'मरुभारती' के "शब्दचर्चा" स्तम्भ म शब्दो की व्युत्पत्ति पर लिखत निखते रहे। विमश और व्युत्पत्ति शीपक ग्रथ मे 84 शब्दो की व्युत्पत्तियाँ दी गयी हैं जिन्ह डॉ० भोलानाथ तिवारी ने बहुत प्रशसनीय माना है 'डॉ सहल की विद्वत्ता जीवत है, उन्ह इस बात का आग्रह नही है कि अमुक बात उन्होंने अतिम रूप से कही है। इसी कारण कई स्थानो पर व्युत्पत्ति देने के साथ-साथ उन्होने यह भी सकेत कर दिया है कि अमुक शब्द (जसे चाल) की व्युत्पत्ति शोध सापेक्ष है।

शब्दो की व्युत्पत्ति पर विचार करत समय डॉ सहल यूरोपीय भाषाओ और भारत की आयभाषाओ की अभिन्नता भी सिद्ध करन का प्रयास करत हैं। व्युत्पत्ति शास्त्र के क्षितिज को विस्तार देन म डॉ सहल ने जो काय किया वह भाषा विज्ञान के क्षेत्र में स्थायी महत्त्व का है।

6 प्रेरक सम्पादक– किसी भी साहित्यिक पत्रिका का सम्पादन एक गहरी व्यापक दृष्टि तथा अनवरत साधना की अपेक्षा करता है। वही साहित्यिक पत्रिकाएँ साहित्य का इतिहास बनाती है जिनके सम्पादक निष्ठापूवक तथा समपण भाव के साथ सम्पादन काय को एक चुनौती क रूप मे स्वीकार करते हैं। सरस्वती का उदाहरण हमारे सामन है। यह एक पत्रिका मात्र नहीं थी प्रत्युत एक युग के हिन्दी साहित्य की विकास यात्रा का दस्तावेज थी।

जिस लगन निष्ठा के साथ और सारस्वत कम के रूप मे आचाय महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का सम्पादन काय किया वैसी ही लगन और निष्ठा क साथ डा कन्हैयालाल सहल ने 'मरुभारती' त्रमासिक का सम्पादन दो दशको स अधिक समय तक किया। मरु भारती बिडला एजूकेशन ट्रस्ट पिलानी की मुख पत्रिका थी पर डॉ सहल की कुशल सम्पादन-क्षमता ने इसे सारे हिन्दी साहित्य की (विशेष रूप से राजस्थानी साहित्य की) एक महत्वपूण पत्रिका बना दिया।

यद्यपि डॉ सहल परम्परा 'वरदा' आदि पत्रिकाओ के परामश मण्डल म रहे तथा उदयपुर से प्रकाशित होने वाली 'शोध पत्रिका' के लिए वर्षों सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखते रहे तथापि उनकी सम्पादन कला का उत्कप हम मरु भारती म ही देखन को मिलता है 1954ई म डा सहल के सम्पादन काल म इस पत्रिका को नया रूप रग और आकार मिला। उसके मुख पृष्ठ को पल्लू

मे प्राप्त सरस्वती की मूर्ति के चित्र से सवारा गया। यह एक आश्चयजनक तथ्य है कि डॉ सहल 'मरु भारती के हर अक मे सरस्वती वदना के रूप मे एक नयी कविता (स्वरचित) छापते रहे। इस पत्रिका के मुख पृष्ठ पर प्राकृत भाषा का यह सूत्र छापा गया- सच्च भगव लोगम्मि सारभूय अर्थात सत्य ही भगवान है तथा लोक म सत्य ही सारभूत है। यह वाक्य इस पत्रिका के स्वरूप को स्पष्ट करने मे सवथा उपयुक्त था क्योंकि इस शोध पत्रिका के माध्यम से डॉ सहल इतिहास, साहित्य सस्कृति आदि स सम्बधित दुलभ सामग्री प्रकाशित करते रहे।

हिन्दी के विकास के लिए जो काय 'सरस्वती तथा साहित्य सदेश ने किया, वही काय राजस्थानी साहित्य के विकास के लिए मरु भारती न किया। इस पत्रिका के माध्यम म डा सहल ने राजस्थान के साहित्य, सस्कृति स्थापत्य पुरातत्व नृत्य नाट्य, भक्ति व्रत, त्यौहार प्रवाद लोकगीत आदि सभी प्रकार के लोक साहित्य का उद्धार किया। यही नहीं इस पत्रिका न नये लेखक पैदा किए और दुलभ सामग्री का सग्रह किया।

मरुभारती पत्रिका मे डॉ० सहल न योजनाबद्ध तरीके से राजस्थान की लोक कथाओ का विशाल कोष सकलित किया। निहालदे सुलतान जैसी विशाल लोक गाथा को पहले तो, डॉ० सहल ने गायकों से सुनकर लिपिबद्ध किया फिर मरुभारती के माध्यम म इस गाथा को सरल हिन्दी म पाठको के लिए सुलभ किया। इसी प्रकार रानी लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत ने देवनारायण बगडा वत की महागाथा का मरुभारती के पन्ना पर ही पहले-पहले प्रस्तुत किया। ये दोनो लोक गाथाएँ पुस्तकाकार रूप म बाद मे प्रकाशित हुई। इसी प्रकार उन्होंने राजस्थानी पवाडो मे पाबूजी नानडिया मरवादे आदि लोकप्रिय गाथाओ को मरुभारती के पृष्ठो पर प्रस्तुत किया। कहावत मूल अभिप्राय प्रवाद आख्यान लोकगीत आदि स सम्बद्ध महत्वपूर्ण सामग्री इस पत्रिका के माध्यम से प्रकाश मे आई।

दुलभ सामग्री के प्रस्तुतीकरण के साथ ही इस पत्रिका म राजस्थानी साहित्य इतिहास और सस्कृति से सम्बद्ध शोधपूर्ण लेख भी नियमित रूप स प्रकाशित होते रहे। इस पत्रिका को प्रभावशाली बनाए रखने के लिए डा सहल न इसम कला साहित्य स्थापत्य सस्कृति, पुरातत्व त्यौहार धम लोक साहित्य सत साहित्य, वीर चरित शब्द चर्चा जसे स्तम्भो के माध्यम म शोधपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की। इस पत्रिका का शब्द चर्चा स्तम्भ तो भाषा विज्ञान की दृष्टि म अत्यन्त लोकप्रिय था जिसम देश के विद्वानो न शब्दो की व्युत्पत्ति तथा उनके

प्रथ विस्तार पर नियमित रूप स लिखा। आवश्यकता पडने पर डॉ० सहल स्वय इस स्तम्भ को लिखत थ।

प्राचीन साहित्य का प्रामाणिक अनुशीलन, अनुवाद चयन तथा उन पर प्रामाण्य टिप्पणियाँ लिखना कितना परिश्रम मागता है, यह बतान की आव श्यकता नही है। पर डॉ० सहल न यह सब काय अकेले (Single handed) किया यह देखकर सुखद आश्चय होता है। पत्रिका के प्रति उनकी निष्ठा का पता तो इस बात म ही लगता है कि हर अक के प्रूफ व स्वय देखत थ और पत्रिका सम्बन्धी सारे पत्र व स्वय लिखत थ। इन पत्रो म व सहस्रो पत्र आते है जो विभिन्न विद्वानो को अनेक प्रश्नो को लेकर उन्हे लिखने पडत थ। फिर भी उनके जीवन काल म मरुभारती निरन्तर निकलती रही। उसका हर अक गम्भीर सामग्री के कारण सग्रहणीय रहा।

मरुभारती के माध्यम से डॉ० सहल ने राजस्थानी और हिन्दी साहित्य की जो सेवा की, केवल उसी के आधार पर उनका नाम अमर रहेगा। मरुभारती की सेवाओ को देखते हुए ही यशस्वी पत्रकार प० बनारसीदास चतु र्वेदी ने लिखा था 'साहित्य के क्षेत्र म तो मरुभूमि की उवरता को आप लोगो न सिद्ध ही कर दिया है। मेरा अनुमान है कि आगामी युग म आप अन्य प्रान्तो म आगे निकल जाएँगे, जो उपयोगी काय मरुभारती कर रही है उसका मैं हार्दिक अभिनदन करता हूँ।

(7) जिज्ञासु अनुसधाता— डॉ० कन्हैयालाल सहल की सारी साहि त्य यात्रा एक सनातन जिज्ञासु की यात्रा है जो कुछ प्रश्नो के उत्तर खोजकर सतुष्ट होता है तो कुछ दूसरे प्रश्नो को लेकर व्याकुल हो जाता है। उनका हिन्दी समीक्षा साहित्य हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में अपना अलग स्थान रखता है तो राजस्थानी साहित्य के क्षेत्र में उनका शोध काय उनकी साहित्य-साधना का एक उज्ज्वल एव उच्च शिखर है। व्यापक रूप से कहे तो लोक साहित्य के क्षेत्र म शायद ही कोई ऐसा रूप बचा हो जिस पर उनकी खोजी दृष्टि न पडी हो। लोक साहित्य के विविध रूपो का सग्रह उनकी व्याख्या तथा उन पर शोध य तीनो काय डा सहल एक साथ सम्पादित करत रहे। अनुसधान के क्षेत्र में उन्होने विभिन्न क्षेत्रो मे काय किया —

[1] राजस्थानी कहावतें उनका स्वय का शोध प्रबध 'राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन' अपने आप मे एक अदभुत कृति है तभी तो डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहा था कहावतो के क्षेत्र मे श्री कन्हैयालाल सहल ने

सच्चा आचार्य पद उपार्जित किया है। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी, डा० दशरथ शर्मा, श्री अगरचन्द नाहटा, श्री पुष्करचन्दर वाकर डॉ० नगेन्द्र जैसे विद्वानो ने उनके इस शोध प्रबंध की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इस ग्रंथ से पूर्व उन्होंने राजस्थानी कहावतों का संग्रह भी किया जो बंगाल हिन्दी मण्डल द्वारा पुरस्कृत भी हुआ। राजस्थानी कहावतें संग्रह मात्र है किन्तु उनका शोध प्रबंध राजस्थानी कहावतों के विचित्र संसार की बिलकुल नयी दृष्टि से यात्रा करना है। राजस्थानी कहावतो पर इतना व्यवस्थित और वैज्ञानिक अध्ययन प्रथम बार डा० सहल ने किया जिसमे कहावत शब्द की व्युत्पत्ति, परिभाषा, कहावत के लिए देशी विदेशी भाषाओं में प्रयुक्त पर्यायों कहावतों मुहावरों तथा लौकिक-न्यायों के बीच सूक्ष्म अन्तर, कहावतो के उद्भव और विकास का तात्विक विवेचन तो इस ग्रंथ में है ही, साथ ही एक-एक कहावत को लेकर डॉ० सहल ने उसके पीछे छिपी कथा देश विदेश में प्रचलित उसके विभिन्न रूपों का सर्वांग पूर्ण विवेचन किया है। यह विवेचन इतना रोचक है कि यह शोध ग्रंथ पढ़ने में उपन्यास की तरह रोचक लगता है।

इस ग्रंथ मे डॉ० सहल ने राजस्थानी कहावतो का वर्गीकरण जिन आधारों पर किया है वे अन्य भाषाओं की कहावतो के वर्गीकरण के लिए सिद्धान्त प्रतिपादन का काम करते हैं। डॉ० सहल ने राजस्थानी कहावतों का रूपात्मक अध्ययन तथा कहावतो के मूल स्वरूप का विश्लेषण बहुत बारीकी से किया है तथा कहावती पद्यों और लौकिक-न्यायों से कहावतों की भिन्नता का विवेचन उनकी सर्वथा मौलिक उद्भावना है। उन्होंने यत्र-तत्र यह भी स्पष्ट किया हैं। कि जिन्हें हम कहावत समझते हैं वस्तुतः वे लौकिक न्याय है। यह सब सिद्ध करने में लेखक ने विश्व की अनेक भाषाओं की कहावतो का गहन अध्ययन किया है जिसका आभास इस ग्रंथ से सहज ही हो जाता है।

शोध के लिए जिस सूक्ष्म और वैज्ञानिक दृष्टि व्यापक अध्ययन और मौलिक निष्कर्ष देने की प्रतिभा की आवश्यकता होती है वह सब इस ग्रंथ मे उपलब्ध है। इतना ही नही यह ग्रंथ अनुसंधान कर्त्ताओं के लिए कहावतो के क्षेत्र में शोध के नये क्षितिजों की ओर संकेत करता है। राजस्थानी कहावतों के बारे में उनका अध्ययन इस शोध प्रबंध को पूर्ण करने के बाद भी चलता रहा तथा कहावतों के सम्बन्ध मे उनके अनेक लेख मरु भारती में भी प्रकाशित हुए जो बाद में उनकी 'चिन्तन के आयाम' 'अनुसंधान और आलोचना' विमर्श और व्युत्पत्ति आदि ग्रंथों में संकलित हुए। स्पष्ट है कि वे इस क्षेत्र मे अनवरत शोध करते रहे।

[11] लोकवार्त्ता सहायता के साथ ही डॉ० सहल ने अपने अनु सधान का क्षेत्र लोकवार्त्ता को चुना और लोक कथाओ के विज्ञान पर उन्होंने ग्रथ लिखे (1) लोक कथाओ की कुछ प्ररूढियाँ, (2) राजस्थानी लोक कथाओ के कुछ मूल अभिप्राय (3) राजस्थानी लोक कथाएँ (4) लोक कथाओ के कुछ रूढ तत्व (5) नटो ता कहो मत।

इन सभी कृतियो म उन्होने लोक कथाओ की प्ररूढियो और मूल अभि प्रायो (Motifs) पर नितान्त मौलिक दृष्टि स विचार किया। उन्होने अभिप्रायो का तात्विक विवेचन करते हुए देश विदेश की लोक कथाओ म प्रर्चा मूल अभिप्रायो का विश्लेषण किया तथा उनसे सम्बद्ध कथाओ का तुलनात्मक दृष्टि स भी रखा। गुजराती के प्रख्यात विद्वान श्री पुष्कर चन्दरवाकर ने ठीक ही लिखा था 'लोकवार्त्ता विषयक मूल अभिप्रायो के रहस्योदघाटन की उनकी अपनी प्रणाली है जो लोकवार्त्ता की विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक पद्धति के रूप म पहचानी जाती है' राजस्थानी भाषा और साहित्य क मनीषी श्री अगरचन्द नाहटा ने भी ऐसे ही भाव व्यक्त किए थे, 'जब से डॉ० सहल ने लोक कथाओ के रूढतत्वो को अपने अनुसधान का विषय चुना है तब से इधर दो तीन वर्षों से उन्हें इसी म डूबा हुआ पाता हूँ ऐसी निष्ठा विरल व्यक्तियो मे ही पाई जाती है।

डा० सहल के इस अनुसधान से यह तथ्य भी सामने आता है कि कथा भिप्रायो अथवा प्ररूढियो की दृष्टि स राजस्थान की लोक कथाएँ बेजोड है सत्य क्रिया, हास्य और रोदन होणी हाय सो होय लाखीणो दूहो दृष्टि गभ रूप परिवतन, शरणागत रक्षा लौटने की प्रतिज्ञा प्राण प्रतीक, निषिद्ध कक्ष मौन धारण और मौन भग मृत्यु-पत्र, वाक छल, जादू की डोरी हसकुमारी लिंग परिवर्तन शरीफ चोर कृतघ्न जीव नाम सयोग साकेतिक भाषा, होड अथवा डाडा मनी नटो तो कहो मत आदि अभिप्रायो का सूक्ष्म विवेचन डा० सहल ने इन कृतियो मे किया है। मुख्य बात यह है कि एक एक अभिप्राय के विश्लेषण मे उन्होने सस्कृत प्राकृत आदि भाषाओ के आख्यानो एव जैन और बौद्ध कथाओ म उपलब्ध अभिप्रायो के उदाहरण दिए है।

सत्यक्रिया नामक अभिप्राय का विश्लेषण करते समय उन्होने इसके स्वरूप और विकास को स्पष्ट करने क लिए ऋग्वद रामायण, महाभारत, श्रीमद भागवत गग सहिता रघुवश कथा सरित्सागर दिव्यावदान, जातक कथाओ निहालदे सुलतान आदि से उदाहरण देकर इसकी प्राचीनतम परम्परा पर प्रकाश डाला है। सभी अभिप्रायो क विश्लेषण म उनकी यही दृष्टि रही है। लोक

कथाओ की पहेलियों नामक पुस्तक पर अपनी सम्मति देते हुए महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने लिखा था "लोक कथाओं के बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाली ऐसी साफ पुस्तक मैंने हिन्दी में नहीं देखी।

इस विषय पर भी उन्होंने अपना शोध कार्य अनवरत रखा। 'अनुसंधान और आलोचना' नामक ग्रंथ में संकलित सांख्य दर्शन का आख्यायिकाध्याय शीर्षक निबंध सांख्य दर्शन में प्रयुक्त विविध लोक कथाओं के मूल अभिप्रायों पर प्रकाश डालता है। सम्भवतः डॉ. सहल का यह प्रथम प्रयास था।

(iii) आख्यान ग्रंथ- डॉ. कन्हैयालाल सहल ने राजस्थान के ऐतिहासिक अथवा प्रख्यात वीर पुरुषों से सम्बद्ध अनेक रोचक किन्तु प्रेरक आख्यानों का संग्रह किया। इन आख्यानों में राजस्थानी वीरों के शौर्य, त्याग और बलिदान की कहानियाँ भरी पड़ी हैं। राजस्थानी वीर गाथाएँ, राजस्थान के ऐतिहासिक उपाख्यान, 'राजस्थानी हरजस', राजस्थानी लोक कथाएँ आदि ग्रंथ आख्यान ग्रंथ हैं, जिनमें डॉ० सहल ने रोचक कथाओं को रोचक शैली में संकलित किया है। इन आख्यानों में 'निहालदे सुलतान' नामक लोक गाथा उनका सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस लोकगाथा को पहले उन्होंने गायकों से चुनकर लिपिबद्ध कराया। फिर उसे सरल हिन्दी में प्रस्तुत किया। निश्चय ही यह कार्य धैर्यपूर्ण अनवरत साधना की मांग करता है। इस प्रकार उन्होंने दुर्लभ किन्तु महत्वपूर्ण साहित्य का संकलन कर शोधार्थियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

अपने अनुसंधान और आलोचना नामक ग्रंथ में उन्होंने लगभग सत्तर आख्यानों को संग्रहीत किया है। ये आख्यान आज शोध के लिए उपलब्ध हैं वर्ना ये सब स्मृति के गर्भ में विलीन हो जाते। डॉ. सहल के इस प्रकार के साहित्य का पुनः प्रकाशन होना चाहिए। नयी संस्कृति की इस चकाचौंध में हमारे सभी लोक रूप धीरे-धीरे यों ही लुप्त होते जा रहे हैं।

(iv) सम्पादित ग्रंथ- डॉ. सहल के शोधपरक सम्पादित ग्रंथों में सबसे प्रमुख है सूर्यमल्ल मिश्रण कृत वीर सतसई जिसका सम्पादन उन्होंने पं. पतराम गौड़ और ईश्वर दान कविया की सहकारिता में किया। वीर सतसई राजस्थानी साहित्य का एक गौरव ग्रंथ है जिसमें कवित्व कौशल अपनी उत्कृष्ट तक ऊँचाई पर है। 'वीर सतसई' का सम्पादन हर दृष्टि से उच्चकोटि का है। सम्पादकों ने प्रारम्भ में विद्वतापूर्ण भूमिका लिखी है जो इस ग्रंथ और सूर्यमल्ल मिश्रण के विषय में अनेक नवीन तथ्यों का उद्घाटन करती है। वीर सतसई

की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए लेखक ने दोहों के मूल पाठ के पाठान्तरों का निर्देश भी दिया। दोहों के शब्दार्थ और उनकी व्याख्या निश्चय ही इस कृति के काव्य सौष्ठव को उद्घाटित करने में सक्षम है।

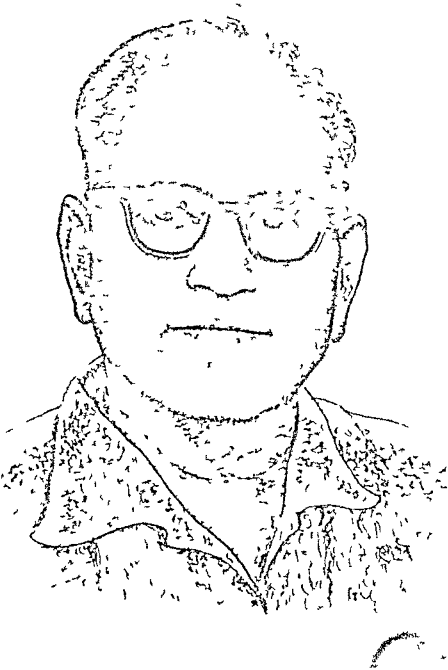
प. पतराम गौड़ की सहकारिता में डॉ. सहल ने चौबोली नामक एक कथासंग्रह का सम्पादन किया है। कथानक रूढ़ियों पर अध्ययन करने वाले लोगों के लिए इन कथाओं में अदभुत सामग्री भरी पड़ी है। इस कृति की मारगर्भित भूमिका में सम्पादकों ने राजस्थानी कथा साहित्य की विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला है। चौबोली में चारों कथाओं के राजस्थानी मूल के साथ उनका हिन्दी रूपान्तर भी दिया गया है।

राजस्थानी के कवि रामनाथ जी कविया रचित द्रौपदी विनय या करुण बहत्तरी नामक कृति का सम्पादन श्री कन्हैयालाल सहल ने किया है। कवि ने यह कृति कारागार में लिखी थी। इस कृति में कवि ने दुःशासन द्वारा चीरहरण किए जाने पर द्रौपदी की कृष्ण को की गयी पुकार का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। कृति में चित्रित द्रौपदी का आर्तनाद मन को हिला देता है। डा० सहल ने कृति के प्रारम्भ में संक्षिप्त भूमिका लिखी है जिसमें उन्होंने कवि की जीवनी तथा कृति की रचना के उद्देश्य को स्पष्ट किया है। मूल पाठ के साथ शब्दार्थ एवं भावार्थ में सम्पादक ने महत्वपूर्ण अन्तकथाओं का उल्लेख भी किया। सम्पादन अत्यन्त स्तरीय है।

उपसंहार

डॉ० कन्हैयालाल सहल का कृतित्व इतना बहुल और बहुआयामी है कि उस सबका मूल्यांकन इतने से में सम्भव नहीं है। उनका व्यक्तित्व जितना निरभिमानी सौम्य और शालीन था उनका साहित्य का रूप उतना ही महत्व-पूर्ण और विराट है। वे अपने जीवन में अत्यन्त सहज अध्यवसायी विनम्र और परिश्रमी थे। उनके व्यक्तित्व के इन गुणों की छाप उनके प्रणीत साहित्य में भी देखी जा सकती है।

एक भाव प्रवण और प्रयोगशील कवि, प्रभावशाली निबंधकार, भाष्य-कार समन्वयवादी समीक्षक दृष्टिवान सम्पादक तथा राजस्थानी साहित्य के अनुसंधाता के रूप में उनका योगदान हिन्दी तथा राजस्थानी में अमर रहेगा।



कविताएँ

वरदे ! वीणापाणि शारदे !

वरदे ! वीणापाणि शारदे !
नव उमंग नव ज्योति नवल रथ

जन-जन मे भर दे।

हंसवाहिनी ! कर-मन-निर्मल,
अर्पित वंदन चरण-कमल-तल,
कलुष दूर कर अविरल पल-पल

हिय जगमग कर दे।

वीणाधारिणि ! नव नव स्वर भर,
शिल्प-कला-विज्ञान-मूर्तिधर !
नव प्रकाश मे आलोकित कर,

जागति का वर दे।

× ❖ ×

शारदे ! शत वंदना ले

(राग—भैरव रूपक अथवा तीव्रा)

शारदे ! शत वंदना ले !
बुद्धिदायिनि हंसवाहिनि ! नव स्वरो मे अर्चना ले।
शिल्प बहु विज्ञान जननी ! कलाओ की साधना ले।
शारदे ! शत वंदना ले।

हृदय-मंदिर ज्ञान लौ जलती रहे यह कामना ले।
भाव सुमनांजलि समर्पित चरण मे शिव भावना ले।
शारदे ! शत वंदना ले।

ज्योतिरूपिणि! महाविद्ये! स्तुति पुनीता भारती! ले।
दिव्य रश्मि बिखेर देवी! हृदय की शत-शत प्रणति ले।
शारदे! शत वदना ले।

श्वेत पद्मासन विराजित! नमित हम सब भारती ले।
वदना के इन स्वरों में स्वर हमारे शारदे! ले।
शारदे! शत वदना ले।

× ❖ ×

भारत माता!

मकडी के जालो से क्या
मॉं!

धूलि-धूसरित
होगा
पावन महल तुम्हारा ?

स्वच्छ रखेंगे उसे सभी हम
सूर्य-रश्मियो से
दीपित हो

जगमग जगमग सदा करेगा।

बिखर पडे जो पुष्प
सुगंधित
उन्हें उठा कर
एक सूत्र मे
गूँथ उन्हें, सब
तुम्हें चढायेंगे
सुन्दर उपहार हमारा।

निर्मोक का मोह

केंचुली त्याग कर
सर्प एक
केंचुली के मोह मे
रुक गया वही।
उधर ही से
सपेरा एक
आ गया।
दांत तोड सर्प के
झोली में डाल
उसे
हो गया प्रसन्न,
और सर्प
मन ही मन
होकर अति दुःख-ग्रस्त
लगा कहने—
'निर्मोक के मोह ने
मुक्ति से
वंचित किया
मुझे।
केंचुली तो अजागलस्तन
वह
सर्प के किस काम की ?

× ❖ ×

समय छन्द है एक विलक्षण

सदियों की चट्टानों पर
पद करके अंकित
बढ़ता रहता समय सदा ही
अपनी गति से।

कुछ चलते हैं साथ
पिछड़ते हैं बहुतेरे,

कुछ आगे बढ़ने के क्रम मे
लुढ़क-लुढ़क पड़ते हैं पथ पर,
उल्टे मुँह भी खाते हैं वे।

समय छन्द है एक विलक्षण
जिसके चरण असंख्य
कौन गिन सकता उनको ?

जिसमे लय है
जिसमे गति है
किन्तु न जिसमे
कही दिखाई पडती
यति है !

× ❖ ×

क्षण का अमरत्व

एक क्षण जो बीतता ही
जा रहा है

और जो पल-पल पुराना
पड रहा है,

क्या न बन सकता वही
अमरत्व का क्षण ?

काल उवर भूमि मे जो
बीज बो जाए अमृत का,

और जो अब तक अनागत
कर उसे अपना समर्पण

दृष्टि की वह सृष्टि

जो कर जाय,

ऐसी कृषि कि जिसकी
फसल को काटें सदा ही

मानवो की वे अनागत पीढिया ।

× ❖ ×

ओ नवो माणस कोण छे ?

दा-दो समुद्र उमडते हैं यहाँ–
एक ओर जल समुद्र
तो दूजी ओर बीजी ओर
जन-समुद्र लहराता है
मरिन लाइन्स से मलाड
औ मलाड से मैरिन लाइन्स
मिनट मिनट पर छूटती हैं
यहाँ गाडियाँ,

दफ्तरा के कर्मचारी
कितने ही क्लर्क औ
कितने ही अन्य जन
बेशुमार हैं
भरे इन गाडियो मे !
मलाड औ अंधेरी जैसे
उपप्रदेश ये

बम्बई के जन समुद्र के
दूर-दूर फैले हुए किनारे हैं
किसी किसी परिवार के जन तो
भोर ही निकल इन उपप्रदेशो से
रात होने पर ही
लौटते
अपने घरा को
और उस परिवार के

नहीं—
सन्तान बच्चे तो
सप्ताह भर
अपने पिता का
दर्शन तक न
कर पाते हैं
रविवार को अलबत
छुट्टी की वजह से
ऐसे पिता को भी
काम से
कुछ राहत मिल पाती है
नहीं तो

पूर्व ही शिशु-जागरण के
निकल पड़ता है
पिता घर से
लौटता है रात को जब
बच्चे
निद्रा की शरण लेते हैं।
एक परिवार के एक बच्चे ने
रविवार के दिन
अपने पिता को
अजनबी से किसी जन को
कोष्ठक की तरह
अथवा वाक्य के
क्लाज-परेंथेटिकल-सा
घर में देखा
तो लगा कहने—
'अरी माँ!
अरी मा!!
ओ नवो माणस कोण छे!!!

× ❖ ×

क्या झुठलाया जा सकता है सत्य कहीं पर ?

'बाहर तो परछाई है
केवल 'भीतर' की
पर उस परछाई को
पढ सकना भी
सरल नही है।
स्वय स्वय को नही जानता
ऐसी कुण्ठाओ का युग है।
जो धूमिल है साफ नही है
उसे कौन से
आईने मे
साफ साफ हम
देख सकेंगे ?
जो भी हो,
पर यह तो सच है—
क्या झुठलाया जा सकता है
सत्य कही पर ?

× ❖ ×

मयूर-व्यसक

आ रे मयूर !
सुन्दर मयूर !
व्यसक मयूर !!
एक बात पूछूँ
उत्तर दोगे !
शहरो मे तुम रहे नही
फिर क्योकर तुमने
बाहर से कमनीय कलेवर
अन्दर से छलिया
बन करके
सीख लिया
विषधर का खाना !!!

बुड्ढे बच्चे

कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो वयस्क होने पर भी बुढ़ापा लिये फिरते हैं। मेरे एक मित्र हैं, जिनमें कष्ट झेलने का माद्दा है ही नहीं। जरा-सी कहीं चोट आ जाय तो दूसरों को दिखलाते फिरेंगे, कहीं खरोंच भी लग जाय तो भी आप चाहेंगे कि दूसरे उनके साथ सहानुभूति प्रदर्शित करें। यदि कहीं सहानुभूति सूचक पत्र अथवा तार मिल जाय तब तो आप बाँसों उछल पड़ेंगे। एक बार हजरत सिल्ली पर उस्तरे की धार बना रहे थे। आपका ध्यान कहीं दूसरी ओर था उस्तरा अनामिका के बीच से निकल गया। लोहू की धारा बह निकली। वैद्य डाक्टरों को घर पर इकट्ठा कर लिया। महीने भर अँगुली का इलाज चलता रहा अँगुली अच्छी हो गई तब भी आप उसके कुछ दिनों तक केवल इसलिये पट्टी बाँधे रहे कि ऐसे अभिनय से आपको अपने मित्रों की सहानुभूति अनायास मिल जायगी। अब उस घटना को महीनों बीत गये हैं। और अँगुली भी अब बिलकुल दुरुस्त है किन्तु फिर भी आप कहते हैं कि मेरी अँगुली विकृत हो गई उसके अन्दर पड़ी हुई रेखा दूसरी अँगुलियों के साथ उसको एकरूप नहीं होने देती। आपकी अवस्था तीस से ऊपर हो चुकी है किन्तु फिर भी बच्चे की तरह सारी जिम्मेदारी आप दूसरों पर डाल देते हैं। हर एक बात के लिये आप दूसरों पर निर्भर रहते हैं। जब मैं कहता हूँ कि यार बड़े भाग्यशाली हो तुम्हें न जाने क्योंकर सबकी सहायता अथवा सहानुभूति मिल जाती है तब तो आपका रोम - रोम खिल उठता है किन्तु जब बुड्ढा बच्चा कह कर मैं उनको बनाने लगता हूँ तब आप आँख दिखाने लगते हैं।

सभ्यता ? यह सभ्यता तो ढकोसला है। मिक्योरिटी सुख शान्ति और उन्नति की सब बातों का असली मतलब यह है कि मानव का बचपन लम्बा होता जाता है जो जितना सभ्य है उसकी बचपन की अवस्था उतनी लम्बी है। सभ्यता तो पराबलम्बिता का नाम बन गया है। पशुओं में बचपन एक साल का होता है हद से हद दो साल का। जंगली लोगों में दस - बारह साल का होता होगा। हम लोग इतने सभ्य हो गये हैं कि अब तीस-तीस साल के बुड्ढे बच्चे दिखलाई पड़ने लगे हैं।

एक युवक था। अवस्था उसकी 25 से कम न होगी। उसकी हरकतों को देखकर मेरे हृदय पर धक्का-सा लगा। एक बार उसकी कार मेरे यहाँ पहुँची तो मैं उसे देखकर दंग रह गया। उसने आम खाने की इच्छा प्रकट की। मैंने कहा मैं अभी आम मँगाये देता हूँ किन्तु उसमें इतना धैर्य कहाँ ? वह बच्चे की तरह 'आम-आम' की रट लगाने लगा। जब आम आया तब उसका चिल्लाना बन्द हुआ। वह अपने आप उठकर कार में भी नहीं बैठता था, उसे गोद में लेकर कार में बिठलाना पड़ता था। आप यह न समझिये कि वह पंगु था किन्तु माता-पिता के अत्यधिक लाड़चाव के कारण वह 25 वर्ष का होने पर भी बच्चा ही रह गया। वह तो सच्चे अर्थ में बच्चा था। उसकी हरकतें तो सचमुच बच्चों जैसी थीं। जीवन में अनेक दृश्य देखे हैं किन्तु मेरे मानस-पट पर इस दृश्य की जो छाप अंकित हुई है वह भुलाये नहीं भूलती।

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो एक दम छलांग मार कर बाल्यावस्था से वृद्धावस्था में पहुँच जाते हैं। युवावस्था, उनमें आती ही नहीं। यौवन की रंगरेलियाँ और अठखेलियाँ उनके लिए अपरिचित सी ही रह जाती हैं। अस्सी अस्सी वर्ष तक के बुड्ढे बच्चों की भूमिका में देखे गए हैं। आप कहेंगे वृद्धावस्था तो एक प्रकार से दूसरा बचपन ही है। किन्तु आप सच मानिये कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो क्या युवावस्था क्या प्रौढ़ावस्था और क्या वृद्धावस्था तीनों अवस्थाओं में बच्चे ही रह जाते हैं। ऐसी ग्रंथियाँ उनके स्वभाव में बन जाती हैं जिनसे वे किसी भी अवस्था में मुक्त नहीं हो पाते।

एक बार एक कबूतर छत-पर से उड़ता हुआ गया। मैंने एक बच्चे को दिखलाकर कहा—देखो, कबूतर उड़ रहा है। बच्चे ने कहा—कबूतर नहीं पडुकी है। मैंने जरा तैश में आकर कहा—कैसी पडुकी है वे ? इतना सुनना था कि बच्चा रूठ गया और मुँह फुला लिया। मेरे एक मित्र हैं जो विद्वान हैं, अध्ययनशील हैं मौलिक विचारक हैं, नित्य नवीन कल्पनाओं के उद्भावक हैं किन्तु बच्चे की तरह इस बात की आशा रखते हैं कि जो कुछ वे कह उसे ब्रह्मवाक्य समझ लिया जाय, जो उनके विरुद्ध बोलने की कोशिश करता है उसके साथ वे जूझ पड़ते हैं। वे ग्रीस के नार्सीसस की तरह हैं जो अपने ही रूप पर मुग्ध हो उठा था। उनके विचार प्रामाणिक उनके भाव प्रामाणिक उनका रहन-सहन प्रामाणिक। कभी-कभी तो वे बच्चों की-सी दलील देने लगते हैं। एक दिन किसी वाग्विवादके सिलसिले में कहने लगे-मैंने कितने व्यक्ति को देखा है, आपने उसके केवल ग्रंथ पढ़े हैं। मैंने कहा गाँधी जी का दर्शन मात्र करने वाला व्यक्ति अतिशयन गांधीवाद के अध्येता से बढ़कर हो, यह तो बड़ी लचर दलील है। फिर बात का प्रवाह दूसरी ओर वह

चला। बच्चा कभी गलती नहीं करता और अपनी समझ से वे विद्वान् भी कम ज्ञानी नहीं करते। अपनी अहमन्यता में वे दूसरों को कुम्हड़-बतिया समझते हैं जे तरजनि देखत डर जाहीं। सृष्टि कर्ता परमात्मा भी उनकी दृष्टि से एक भूल है जो वे लोगों के दिमाग में निकाल डालना चाहते हैं।

कहते हैं अचेत मन का भंडार अवचेतन तथा चेतन की अपेक्षा कहीं अधिक है। अचेतन मन की क्रियाओं को हम स्वयं नहीं जान पाते दूसरे ताड़ जाते हैं और हम टाकते ही रह जाते हैं। यह कितने आश्चर्य की बात है कि अपने मन के गुप्त रहस्यों को हम नहीं जान पाते, कोई मनोविश्लेषक मित्र उसे जान लेते हैं। हम प्रगतिशील हैं और इस प्रगतिशील युग में हम चारों ओर देखते हुए आगे बढ़ना चाहिये। जार्ज बर्नर्डशा ने एक बार लिखा था कि यदि कोई पुरुष या स्त्री सामान्य ढंग से पैदा न हो कर अंडे में पलता रहे और करीब बीस वर्ष की युवावस्था में अंडा फोड़कर बाहर निकले तो वह इस कार्य - व्यस्त जगत् को देख कर चकित हो जायगा। संसार की इस महान् हलचल को देखकर वह पूछेगा— 'यह सब क्या तमाशा हो रहा है ? किन्तु चारों ओर देखकर भी हम इस प्रगति को देख नहीं पाते, विकृति हमारा पीछा नहीं छोड़ती। हममें से बहुत से ऐसे हैं जो बचपन को साथ लेकर आगे बढ़ रहे हैं। मैं पूछता हूँ - यह सब क्या तमाशा हो रहा है? काश कि हम जान पाते!

मेरे एक सम्मान्य मित्र हैं जो सायंकाल घूमने के लिये साथ हो लेते हैं। वे चाहते हैं कि मैं उन्हीं की बातें सुनता रहूँ, उन्हें इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं कि जो मैं कह रहा हूँ उसमें दूसरे की दिलचस्पी है या नहीं। कभी भूलकर अपना दृष्टिकोण भी उनके सामने रख देता हूँ तो आप उसे कभी स्वीकार नहीं करते मैं लाख सही बात कहूँ किन्तु उसका विरोध करने में उसको किसी प्रकार काट देने में ही आप अपना बड़प्पन समझेंगे। किसी काम को करने के लिए कहने पर बच्चा उसे नहीं करता, निषेध करने पर करने लगता है। मेरे इन मित्र की अवस्था 40 से अधिक हो गई है किन्तु हैं वे अभी तक निरे बच्चे ही। इन्हें मैं बुड्ढा बच्चा कहता नहीं, कभी कह दूं तो तुरन्त वे मेरी नीयत पर शक करने लगेंगे। एक दिन मैंने कहा—प्रमुख व्यक्ति उनके भाई होते हैं। कहा—भाई हो ही नहीं सकते, और कुछ भले ही हों। यह उत्तर सुनकर जब मैं हँसी से लोटपोट हो गया तब वे कुछ मून-मून से दिखलाई पड़े। किसी भी बात को सुनकर उसका निषेध कर देने की उनकी आदत ही पड़ गई है वे उससे लाचार हैं और फिर इनका हठ भी बच्चे का सा हठ है।

का असर है। मानसिक स्वास्थ्य का वैज्ञानिक अध्ययन करने वालों ने सबसे पहले जनता को इस विषय में शिक्षित करना प्रारम्भ किया कि मानसिक विकार भी अन्य विकारों की तरह ही हैं। बीयर्स के प्रयत्नों में अन्य बहुत से उत्साही लोग शामिल हो गये और 6 मई सन् 1908 को मानसिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पहली सभा की स्थापना हुई जो आगे चलकर उस राष्ट्रीय समिति का अंग बन गई जिसकी स्थापना सन् 1909 में हुई। दस वर्ष बाद मानसिक स्वास्थ्य के सबंध में एक अंतर्राष्ट्रीय कमेटी का निर्माण हुआ जिसके कारण इस आंदोलन को अंतर्राष्ट्रीय रूप प्राप्त हुआ। सन् 1930 में जब मानसिक स्वास्थ्य के सबंध में वाशिंगटन में पहली अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस हुई तो 53 देशों के प्रतिनिधियों ने उसमें भाग लिया था। इससे स्पष्ट हो है कि बीयर्स ने जिस आन्दोलन का सूत्रपात किया था, केवल दो दशाब्दियों के थोड़े से समय में ही विश्व का प्रत्येक देश किसी न किसी रूप में इस आंदोलन में अभिरुचि रखने लगा।

मानसिक स्वास्थ्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। शारीरिक कष्ट, मानसिक वेदनाएँ, घोर दारिद्रय, व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष सामाजिक अपमान, ईर्ष्या द्वेष धार्मिक द्वन्द्व प्रेमियों का वैमनस्य सभी का सबंध इस विषय से है। इसलिए प्रारम्भ में ही यह समझ लेना आवश्यक है कि यह विषय केवल चिकित्सकों में ही सबंध नहीं रखता, इसका सबंध मानव मात्र से है। क्या कालेज, क्या स्कूल, क्या घर क्या मंदिर क्या मसजिद क्या न्यायालय क्या कार्यालय, उन सभी संस्थाओं से इसका सबंध है जो मनुष्य के आचार विचार किंवा उसके बर्ताव व्यवहार को किसी भी कदर प्रभावित करती है।

मानसिक स्वास्थ्य' की परिभाषा देना भी एक अत्यन्त दुष्कर कार्य है किन्तु यदि इसकी परिभाषा देनी पड़े तो उसके पहले रवि बाबू की एक प्रार्थना की ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा जिसमें कहा गया है कि 'हे भगवन्! दुःखों में मेरी रक्षा करो यह प्रार्थना मैं नहीं करना चाहता। दुःख आवें, विपत्तियों के पहाड़ टूटें उन सबका मैं स्वागत करता हूँ, किंतु मैं तो केवल यह चाहता हूँ कि विपत्तियों के सामने मैं कन्धा न डाल दूँ, हे भगवन्! मैं आपसे केवल यही माँगता हूँ कि आप मुझे ऐसी शक्ति दें जिससे मैं विपत्तियों से लोहा ले सकूँ।' गीताकार ने इसी भावना को सूत्रबद्ध करते हुए लिखा है नात्मानमवसादयेत् अर्थात कोई भी अपने आपको अवसाद के वशीभूत न होने दे।

मानसिक स्वास्थ्य वस्तुतः एक ऐसी अदम्य मनोवृत्ति है जिसका आश्रय लेकर हम आनन्दपूर्ण उत्साह की उमंग के साथ कठिनाइयों से जूझते हैं और

जीवन के प्रति एक आशापूर्ण दृष्टिकोण बनाये रहते हैं। इस वृत्ति के कारण ही हमें अपने काम में रस आता है हम लगन के साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करते चले जाते हैं और विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी हम जीवन का दाँव नहीं हारते, उसे जीतने के लिए हम मृत्यु तक का वरण कर लेते हैं। सच तो यह है कि जो व्यक्ति मानसिक दृष्टि से स्वस्थ है, उसे जीवन में आनन्द का अनुभव होता है। केवल कुछ नियमों अथवा सूत्रों को कंठाग्र कर लेने से मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त नहीं किया जा सकता मानसिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध जीवन के क्रिया कलापों से है। मानसिक दृष्टि में कोई व्यक्ति स्वस्थ है अथवा नहीं इस बात का पता तभी चलता है जब हम उसे जीवन के विविध क्षेत्रों में काम करते हुए देखते हैं।

अनेक विद्वानों ने अपने अपने ढंग से गीता की व्याख्या की है। किन्तु गीता के पहले अध्याय से ही स्पष्ट है कि अर्जुन अपना मानसिक स्वास्थ्य खो बैठा था। इस अध्याय का नाम भी 'अर्जुन विषादयोग' रखा गया है जो बहुत ही उपयुक्त है। अपने सम्बन्धियों को युद्ध-क्षेत्र में एकत्र देखकर अर्जुन के अंग प्रत्यंग शिथिल हो गये, मुँह सूख गया शरीर काँपने लगा और रोएँ खड़े हो गये गाण्डीव हाथ से छूटने लगा बदन में आग सी लग गई खड़ा रहना तक उसके लिए दूभर हो गया, उसका दिमाग चक्कर खाने लगा। अर्जुन ने स्पष्ट स्वीकार किया— भ्रमतीव च मे मनः। उसके जीवन का रस जाता रहा। उसने कहा— अपने सगे सम्बन्धियों को मार कर मैं विजय नहीं चाहता। न मुझे राज्य चाहिए न सुख। हे गोविन्द ! मुझे राज्य और भोग से क्या काम ! अथवा जीने से ही मुझे क्या लाभ ?' इतना कह कर अर्जुन ने धनुष-बाण डाल दिया और अपने मन को शोक में डुबाए हुए रथ के पिछले भाग में जाकर बैठ गया।

यहाँ पर यह प्रश्न सहज उपस्थित होता है कि जिस अर्जुन ने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की थी, *युद्ध के समय उसका मन विचलित क्यों हो उठा ?* स्पष्ट है कि किसी भी प्रकार के भयंकर युद्ध से अर्जुन विचलित नहीं हो सकता था, उसके विचलित होने का कारण था उसका मानसिक संघर्ष और उसकी किंकर्त्तव्यविमूढ़ता। कृष्ण ने उसे आड़े हाथों लेते हुए कहा था कि हे अर्जुन ! तुझे यह हृदय-दौर्बल्य शोभा नहीं देता इस विषम घड़ी में तुझे यह मोह कहाँ से पैदा हो गया ? अर्जुन ने उत्तर देते हुए कहा कि कार्पण्यदोष से मेरी वृत्ति मारी गई है मैं कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय नहीं कर पा रहा। जान पड़ता है कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय न कर सकने पर भी मानसिक स्वास्थ्य जाता रहता है,

'असंमूढचित्तता' एक प्रकार से मानसिक औचित्य की अवस्था है और मानसिक स्वास्थ्य के लिए दृढ़तापूर्वक स्थित रहने की आवश्यकता है। गीता के अन्तिम अध्याय में कृष्ण ने अर्जुन से पूछा —

> कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
>
> कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय॥

अर्थात्, हे अर्जुन! यह तूने एकाग्रचित्त से सुना! हे धनंजय! इस प्रकार के कारण जो मोह तुझे हुआ था वह क्या नष्ट हो गया? उत्तर में अर्जुन ने कहा—

> नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
>
> स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

अर्थात् हे अच्युत! आप की कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है, मुझे समझ आ गई है, शंका का समाधान हो जाने से मैं अब स्वस्थ हो गया हूँ, आपका कहा करूँगा। उक्त श्लोक में 'स्थितोऽस्मि' पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। 'स्थितोऽस्मि' निश्चय ही 'स्वस्थ हो गया हूँ' का पर्याय जान पड़ता है।

इस प्रकार उपक्रम और उपसंहार दोनों से स्पष्ट है कि गीता में मानसिक स्वास्थ्य की समस्या का समाधान किया गया है। गीताकार के शब्दों में यदि हम मानसिक स्वास्थ्य का स्वरूप निर्धारित करना चाहें तो वह कुछ इस प्रकार का होगा—

> "इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
>
> × × × ×
>
> यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
>
> यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥
>
> यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
>
> निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा॥

अर्थात् साम्य में जिनका मन स्थित है, उन्होंने यहीं इस संसार पर विजय प्राप्त कर ली। जिस साम्य को प्राप्त कर लेने पर साधक और किसी भी को अपेक्षया बड़ा लाभ नहीं मानता, इस प्रकार के साम्य में स्थित होने पर

भारी से भारी दु ख आ पडने पर भी वह विचलित नही होता। वस्तुत योग की स्थिति यही है। अब भली भाँति नियमबद्ध मन अपने मे स्थिर होता है और समस्त कामनाओ के प्रति नि स्पृह हो जाता है।

बुद्धि की अस्थिरता से मानसिक स्वास्थ्य जाता रहता है। सभवत इसीलिए गीता मे बार बार स्थितप्रज्ञ, स्थिरबुद्धि, समबुद्धि आदि का विशद विवचन किया गया है।

गीता म बुद्धि का जिस प्रकार विवेचन हुआ है, उसको लकर हम बुद्धि के तीन रूप कर सकत हैं— (1) विवक (2) एकाग्रता या भक्ति और (3) दृढ सकल्प, जा बुद्धि सत् और असत मे विवेक स्थापित करती है वह ज्ञान की आर ल जाती है। जो बुद्धि एक ही वस्तु पर ध्यान को केंद्रित रखती है, वह भक्ति की ओर सन्मुख है। गीता मे जहाँ, मयि बुद्धि निवेशय कहा गया है वहा बुद्धि एकाग्रता या भक्ति के अथ मे प्रयुक्त है। व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनदन' कह कर गीताकार ने बुद्धि के उस रूप का विवेचन किया है जिसका सम्बन्ध दृढ सकल्प अथवा निश्चय से है। बुद्धि के इन तीनो रूपो का गीताकार न क्रमश ज्ञान, भक्ति और कम के नाम से अभिहित किया है।

सब मनुष्यो मे ज्ञान भक्ति और कम का समान विकास देखने को नही मिलता। इन तीनो मे वैषम्य हान पर मानसिक सन्तुलन जाता रहता है जिसके कारण हम पद-पद पर ठोकर खात हैं और हमारा जीवन दु खमय बन जाता है। जिस निष्काम कम अथवा अनाशक्ति याग का सिद्धान्त गीता मे प्रतिपादित किया गया है, वह ज्ञान, भक्ति और कम के समन्वय स ही जीवन मे चरितार्थ किया जा सकता है।

गीता म सिद्धि और असिद्धि के समत्व अथवा कम-कौशल को याग की सना दी गई है। किन्तु गीता मे जिसे योगी कहा गया है, वह व्यक्ति आधुनिक मनोवैज्ञानिक शब्दावली मे सश्लिष्ट व्यक्तित्व (Integrated personality) का ही चित्र उपस्थित करता है। योग को प्रशस्य ठहरात हुए गीताकार कहत हैं—

> तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक ।
> कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

यहा जिस योगी की प्रशसा की गइ है उसमे ज्ञान, भक्ति और कम तीनो का समन्वय मिलता है।

गीता मे किसी प्रकार के अतिवाद का समर्थन नहीं किया है। अत्यन्त भोजन करना, कुछ न खाना, खूब सोना और खूब जगना ये सब योग सिद्धि म बाधक समझे गये हैं। गीता मे युक्ताहार विहार को ही योगी के लिए वाछनीय ठहराया गया है। उदाहरणार्थ—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नत ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

कर्मेन्द्रियो को वश म कर मन से विषयो का चिन्तन करते रहना गीताकार की दृष्टि मे पाखण्ड है। वाछनीय यह है कि मन के द्वारा इन्द्रियो का नियमन कर कर्मयोग की सिद्धि की जाय।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियै कर्मयोगमसक्त स विशिष्यते ॥

आधुनिक मनोविज्ञान मानसिक स्वास्थ्य के लिए सन्तुलन, साम्य, समत्व आनुरूप्य आदि को आवश्यक समझता है। गीता म ये सब भाव रत्नो की भाँति बिखरे पडे हैं।

प्रारम्भ म कहा गया है कि मानसिक स्वास्थ्य जीवन के प्रति आशा पूर्ण दृष्टिकोण बनाये रहने से प्राप्त होता है। अदम्य आशापूर्ण मनोवृत्ति के परिणाम स्वरूप किस प्रकार रुग्ण शरीर वाला व्यक्ति भी मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त कर लेता है यह श्री महादेवी वर्मा जी के निम्नलिखित गद्य काव्य म स्पष्ट है—

'दुख ! तू है कहा ?

श्वास-पीडित के श्वास म मलेरिया के बुखार म, शीतज्वर वालों म, इन्फ्लुएंजा म अथवा न्युमोनिया म मैंने तुम नहीं देखा।

दुख ! तू है कहा ?

ऋणी की दरिद्रता म, गरीब की झोपडी म, धनिक की चिंता म मैंने तुम नहीं देखा।

दुख ! तू है कहां ?

जाडो की ठंड मे, गर्मियो की धूप मे या वर्षा के झल्लो मे मैने तुझे नही देखा।

दुःख ! तू है कहाँ ?

मित्रो के क्लेश मे, पत्नी के रोग में, शत्रुओ के द्वेष मे मैंने तुझे नही देखा।

× × × ×

दुःख ने उत्तर दिया— 'मैं तो सर्वत्र हूँ। परन्तु भाई मेरे हृदय की गहराई के जिस किले मे छिप कर तू खेल रहा है वहा मैं तुझे छू नही सकता।'

तो ठीक है, मैं उस किले मे बाहर ही नही निकलूगा।'

इस गद्य-काव्य मे जितनी पीडाओ और मुसीबतो का उल्लेख है वे सब मशरूवाला जी पर बीत चुकी थी। बीमारी ने तो अत तक उनका पीछा नही छोडा। किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी जीवन के प्रति जो आशापूर्ण दृष्टिकोण उन्होने बनाये रखा वह निश्चय ही उनके मानसिक स्वास्थ्य का परिचायक था।

जो व्यक्ति मानसिक दृष्टि से स्वस्थ है वह प्रसन्नता को अपने हाथ से नही जाने देता। इसे ही गीताकार ने प्रमाद के नाम से अभिहित किया है

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धि पर्यवतिष्ठते ॥

बुद्धि विचलित होने से मानसिक स्वास्थ्य दूषित होता है और बुद्धि विचलित तभी होती है जब मनुष्य प्रसन्नचित्त रहना बन्द कर देता है। इसलिए मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह अपने मे मानसिक प्रसन्नता की आदत डाले।

मानसिक स्वास्थ्य अकस्मात प्राप्त नही हो जाता। मन तो सभी को मिला है, किन्तु मन-मन मे भी कितना अन्तर है ! कुछ मनुष्य ऐसे होते है जो विपत्तियो से भयभीत नही होते, प्रलोभन जिन्हे वशीभूत नही कर पाते और मृत्यु भी जिनके मानसिक सन्तुलन पर आघात नही कर पाती। इसके विरुद्ध असख्य जन ऐसे है जो बात की बात मे घबडा जाते हैं और मृत्यु के पहले ही न जाने कितनी बार मर चुकते हैं।

व्याधि से आधि भयकर होती है। शारीरिक पीडा के कारण नाम आत्म-हत्या करते नही देखे जाते और मानसिक व्यथाओ के कारण आत्म हत्या

करने वालों की कमी नहीं। इससे जान पड़ता है कि शारीरिक स्वास्थ्य की अपेक्षा भी मानसिक स्वास्थ्य कहीं अधिक महत्वपूर्ण है— सच तो यह है कि शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य दोनों का अभिन्न सम्बन्ध है।

इस अपूर्ण संसार में शायद ही कोई ऐसा मनुष्य मिलता हो जिसका मन पूर्णतः स्वस्थ हो। जूलियस सीज़र एक क्लियोपेट्रा के प्रेम में अपने साम्राज्य को भूल गया था। बादशाह अकबर के लिए प्रसिद्ध है कि वह कभी तो उदार बन जाता और कभी निर्दय, और कभी धर्मात्मा और कभी पापात्मा। कभी तो ईश्वरोपासना में तल्लीन हो जाता और कभी पाप-कर्म में प्रवृत्त हो जाता। कुछ समय बाद फिर पश्चात्ताप की कविताएँ लिखता और ध्यानमग्न हो जाता। बादशाह सोलन तो ज्ञान का अवतार माना जाता है किन्तु वह अपने पुत्र के लिए कुछ नहीं कर सका। कन्फ्यूशियस से एक बार कोई सज्जन मिलने के लिए आये। दार्शनिक ने किसी से कहलवा दिया कि वह घर पर नहीं है, किन्तु आगन्तुक सज्जन ज्यों ही जाने को हुए ऊपर के कमरे में बैठे हुए कन्फ्यूशियस ने गाना शुरू कर दिया। जिससे उक्त सज्जन को पता लग जाय कि दार्शनिक घर पर ही है। मिल्टन के लिए तो प्रसिद्ध ही है कि जब अपनी 17 वर्षीय पत्नी से उनकी नहीं पट सकी तो आपने तलाक पर एक पुस्तक ही लिख डाली। लोगों ने जब इसका विरोध किया तो कवि ने वाक्-स्वातन्त्र्य का जोरों से समर्थन शुरू कर दिया। चीन के सबसे बड़े कवि TuoYinuming के लिए कहा जाता है कि वे मदिरा के बड़े शौकीन थे। वे एकान्तसेवी थे और दर्शकों से मिलना जुलना पसन्द नहीं करते थे। किन्तु जहाँ शराब देख लेते वहाँ बिना बुलाए ही पहुँच जाते थे। इस बात की भी उन्हें परवाह न थी कि मेजबान से उनका कोई परिचय है या नहीं। आप स्वयं कभी मेहमानों को निमन्त्रित करते तो सबसे पहले पीने बैठ जाते थे और पी चुकने पर कहा करते— 'मदिरा-पान कर चुका और निद्रा देवी के वशीभूत हो रहा हूँ अब आप लोग अपने अपने घर जा सकते हैं।' इस प्रकार के अनेक उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि योगी व्यक्तित्व के पुरुष (Integrated Personality) संसार में बहुत दुर्लभ हैं।

('विवेचन' से)

विचार प्रधान निबंध

संस्कृति क्या है ?

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका हम प्रयोग बहुत करते हैं किन्तु फिर भी उनके सम्बन्ध में हमारी कोई स्पष्ट धारणा नहीं रहती। संस्कृति भी एक ऐसा ही शब्द है। यदि एकाएक इस शब्द की परिभाषा देने के लिए हमें कहा जाय तो पूर्णतः सन्तोषजनक परिभाषा देना एक मुश्किल काम हो जायगा। संस्कृति शब्द अंग्रेजी के कल्चर शब्द को लेकर भारतीय भाषाओं में प्रचलित हुआ है। संस्कृति शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में आज हम करते हैं उस अर्थ में संस्कृत के किसी ग्रन्थ में मैंने इस शब्द का प्रयोग नहीं देखा। जिस अंग्रेजी शब्द के आधार पर यह गढ़ा गया है, वह अंग्रेजी शब्द भी बहुत पुराना नहीं है। कहते हैं मानसिक खेती के अर्थ में प्रथम बार इसका प्रयोग अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबन्ध लेखक लार्ड बेकन ने किया था। जिस प्रकार खेती के लिए जमीन तैयार करते समय कंकड़, पत्थर और अनावश्यक वस्तुओं को दूर कर दिया जाता है ताकि उसमें बीज डालने पर उचित फसल हो सके, उसी प्रकार मनुष्य के स्वभाव में, उसकी मनोवृत्तियों में जो संस्कार जो परिमार्जन होता है उसे संस्कृति कहते हैं। किन्तु इतना कह देने से ही काम नहीं चलेगा इस शब्द का विशेष स्पष्टीकरण आवश्यक है।

बंधे हुए तालाब का पानी गंदला हो जाता है, स्वच्छ पानी के लिए मुक्त प्रवाह आवश्यक है। उसी प्रकार जो मनुष्य अपने संकीर्ण स्वार्थों के घेरे में घिरा रहता है उसकी मनोवृत्ति भी दूषित ही समझिए। ऐसे व्यक्ति को हम संस्कृत व्यक्ति नहीं कह सकते। जहाँ संस्कृति है, वहाँ स्वभाव की उदारता अवश्य मिलेगी। जिस प्रदेश में एक भी संस्कार सम्पन्न व्यक्ति विचरण करता है, उस स्थान का वातावरण ही आलोकित हो उठता है। दूसरों की भलाई करने में जहाँ मनुष्य को सुख मिलने लगता है, वहाँ वह जंगली पाशविकता के मार्ग को छोड़ कर संस्कृति के मार्ग में पदार्पण करता है। इसलिए भारतवर्ष के ऋषियों ने सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः कह कर समस्त मानव जाति के हित की

शुभ कामना की है। कहते हैं कि रघु का भाग्य विधाता लेकिन अपने हाथ में रखे हुए केवल रोटी के टुकड़े स्वयं न खाकर दूसरों को खिला दिया करता था। स्वयं प्यासे होने हुए भी फिलिप सिडनी ने अपना पानी का गिलास एक घायल सिपाही को यह कहकर दे दिया था कि तुम्हारी आवश्यकता मेरी आवश्यकता से अधिक है। राजा रन्तिदेव के लिए प्रसिद्ध है कि एक बार उन्हें 48 दिनों तक पीने को जल भी न मिला। उन्चासवें दिन वह कुछ खान-पीन का आयोजन कर रहे थे कि क्रम से एक ब्राह्मण, एक शूद्र और एक कुत्ते को लिए हुए एक अतिथि आ पहुंचे। सब सामान अतिथि सत्कार में समाप्त हो गया, केवल जल बचा रहा उसे पीने के लिए ज्योंही उन्होंने हाथ उठाया कि एक प्यासा चांडाल आ गया और पीने के लिए जल मांगने लगा। राजा ने वह जल भी दे दिया। आज से करीब ढाई हजार वर्ष पूर्व सिद्धार्थ ने अपना घर केवल इसीलिए त्याग दिया था कि किसी तरह पीड़ित मानवता को दुःख से मुक्ति मिले। संसार के मजदूरों को सुखी देखने का स्वप्न देखते हुए कार्ल मार्क्स ने (1818-1883) अपना जीवन अनेक दुःखों और कष्टों का सामना करते हुए बिताया।

पशुओं में जिस तरह स्वार्थ की प्रबलता देखी जाती है उस तरह सुसंस्कृत मानव में नहीं। वस्तुतः देखा जाय तो मानवता का विकास ही संस्कृति का प्रमुख लक्षण है। आज जो स्वार्थों की सिद्धि के लिए संघर्ष चल रहा है उसके मूल में संस्कृति नहीं इसके पीछे है स्वत्व्य बर्बरता और पाशविकता। संस्कृति ही हमें परस्पर मनुष्यों की तरह प्रेमपूर्वक रहना सिखलाती है। उदारता और सहनशीलता संस्कृति का आवश्यक गुण है। संस्कृति द्वारा ही हमारी सभ्यता का प्रसार अथवा विकास होता है।

संस्कृति के विषय में और स्पष्टता से विचार करना आवश्यक है। कल्पना कीजिए उस समय की जब मनुष्य का अग्नि से साक्षात्कार नहीं हुआ था। आज एक साधारण दियासलाई की सहायता से घर-घर चूल्हे जलते हैं। किन्तु पहले पहले जिस आदमी ने अग्नि का आविष्कार किया होगा वह वास्तव में बड़ा आविष्कर्ता रहा होगा। अथवा कल्पना कीजिए उस समय का जब मनुष्य को सुई धागे का परिचय न था। जिस मनुष्य के दिमाग में पहले पहल यह बात आई होगी कि लोहे के एक टुकड़े को घिस कर उसके एक सिरे में छेद कर और छेद में धागा पिरोकर कपड़े के दो टुकड़े एक साथ जोड़े जा सकते हैं वह भी कितना बड़ा आविष्कर्त्ता रहा होगा। जिस योग्यता व बुद्धि के बल पर आग तथा सुई धागे का आविष्कार हुआ उस योग्यता को तो व्यक्ति विशेष की संस्कृति समझिए और जो आविष्कार हुआ उसे समझिए सभ्यता। उक्त

दोनों उदाहरणों से हम सभ्यता और संस्कृति के अन्तर को स्पष्ट कर सकते हैं। संस्कृति अन्दरूनी वस्तु है जब कि सभ्यता उसकी बाह्य अभिव्यक्ति है। सभ्यता यदि देह तो संस्कृति है देह के भीतर रहने वाला प्राण। मैक आइवर ने ठीक ही कहा है— Our culture is what we are our civilisation is what we use

सभ्यता और संस्कृति का विवेचन करते समय एक अन्य महत्वपूर्ण बात की ओर हमारा ध्यान और जाना चाहिए। एक व्यक्ति अपने मस्तिष्क की सहायता से किसी वस्तु का आविष्कार करता है किन्तु उसकी संतान को वह वस्तु अनायास प्राप्त हो जाती है। रेल और मोटर का जिसने आविष्कार किया उस व्यक्ति की शक्ति को ही हम संस्कृति में शामिल कर सकते हैं—मोटर, रेल वायुयान आदि की मशीनरी के बारे कुछ भी जानकारी न रखते हुए उनका बराबर उपयोग कर सकते हैं। किन्तु कालिदास, गटे और शेक्सपियर के ग्रन्थों का रसास्वादन कोई सहृदय शिक्षित व्यक्ति ही कर सकता है। इससे सिद्ध है कि संस्कृति पर सहज ही अधिकार प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसमें मनुष्य की अन्तरात्मा की अभिव्यक्ति होती है।

सभ्यता का अनुकरण हो सकता है, संस्कृति का नहीं। मैंचेस्टर के ढंग के कल-कारखाने खुल सकते हैं बैंक, पार्लामेंट बीमा-कम्पनी आदि सब की स्थापना की जा सकती है। साधन उपलब्ध होने पर टैंक, वायुयान आदि चाहे जितनी संख्या में तैयार किए जा सकते हैं। राष्ट्रीय सम्पत्ति भी सैकड़ों गुना बढ़ाई जा सकती है किन्तु कहाँ है वह फैक्टरी जहाँ गांधी और टैगोर गढ़े जा सकें? अनन्त मानव-समुदाय की शक्ति का एक साथ प्रयोग करके भी कालिदास, शेक्सपियर, बुद्ध, शंकर और लेनिन का स्वेच्छा से निर्माण नहीं किया जा सकता। लाखों नामधारी रामों श्यामों को मिला कर भी कहीं राम और कृष्ण का निर्माण किया जा सकता है?

ऊपर के विवेचन से एक बात तो निश्चय ही सिद्ध हो जाती है कि संस्कृति आन्तरिक वस्तु है और सभ्यता है बाह्य वस्तु। सभ्यता यदि पुष्प है तो संस्कृति है उसके अन्दर रहने वाली सुगंधि।

लेकिन फिर भी कल्चर शब्द इतना आसान नहीं है। मैं समझता हूँ यदि जाँच-पड़ताल की जाय तो हममें से ही कुछ लोग कल्चर का एक अर्थ लगायेंगे और कुछ लोग दूसरा। क्या खास तरह के कपड़े पहनना कल्चर में शामिल है? मैं कभी धोती-कुरता पहनता हूँ कभी पेंट, कोट और गाउन का प्रयोग करता हूँ

तो क्या मेरा कल्चर बदल जाता है? क्या खास तरह से बोलना कल्चर में शामिल है? अबे तबे बोलना, तुम तुम करना, हम फूल कहना क्या ये सब कल्चर में शामिल है ? आप आदाब अर्ज करते हैं वे दुआ सलाम करते हैं-मैं नमस्कार अथवा राम राम करता हूँ तो क्या हम और आप भिन्न-भिन्न कल्चर का परिचय देते हैं ? एक तरफ गुरुकुलों की शिक्षापद्धति है एक तरफ शांतिनिकेतन की प्रणाली है और दूसरी ओर आधुनिक कालेज की शिक्षा शैली है तो क्या इन शिक्षा प्रणालियों में भी कल्चर पर प्रभाव पड़ता है ?

भिन्न-भिन्न जातियाँ भिन्न भिन्न ढंग से अपने उत्सव मनाती हैं तो क्या इसमें भी भिन्न भिन्न कल्चर का परिचय मिलता है ? खान पान के तरीके हैं क्या इनमें भी कल्चर झलकता है ? क्या भिन्न-भिन्न जातियों के नृत्य और संगीत भिन्न-भिन्न कल्चर का परिचय देते हैं ?

सभ्य मनुष्य का अर्थ है जो सभा में बैठने लायक हो—बैठने के काबिल हो। कल्ट का अर्थ है हल। संस्कृत मनुष्य का अर्थ है वह मनुष्य जिसका दिमाग मंजा हुआ और परिष्कृत हो।

एक प्रश्न यहाँ सहज ही उठता है क्या बुद्धिमान आदमी संस्कृत ही कहा जायगा ? कुछ लोग अहंवादी होते हैं अहंमन्य होते हैं, जो अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझते। अपने बर्ताव व्यवहार में भी वे अपने अहंवादी स्वभाव का परिचय देते रहते हैं। ऐसे लोगों को कल्चर्ड नहीं कहा जाता—किन्तु इससे यह न समझा जाय कि ज्ञान और कल्चर का कोई अनिवार्यतः विरोध है। वास्तव में अच्छा ज्ञान तो संस्कृति की ओर ले जाने वाला होना ही चाहिये। डा० भगवानदास के मतानुसार यदि हम संस्कृत हैं तो (1) हमारा मस्तिष्क अच्छा और मजबूत होना चाहिये। मस्तिष्क के अच्छे होने का मतलब है मनुष्य भलाई और बुराई में अन्तर मालूम कर सके, उसके पास ज्ञान का अच्छा भंडार हो। मस्तिष्क के मजबूत होने का अर्थ है कि मनुष्य सब तरह की चीजों को जल्दी से समझ सके उसकी यादाश्त अच्छी और पक्की हो।

(2) हमारा चरित्र अच्छा और मजबूत होना चाहिये। चरित्र की अच्छाई का मतलब यह है कि हम अच्छे कामों में अपना मन लगाते हों, चरित्र की मजबूती का मतलब यह है कि आदमी जिन चीजों को करना चाहे उन्हें हिम्मत के साथ करता रहे, जिन चीजों से बचना चाहे उन से हिम्मत के साथ बचे। आज मुझसे मिलने के लिए मेरे एक पुराने मित्र आये। मैंने उनको अपने सामने सिगरेट पीते हुए देख कर पूछा—भाई तुम सिगरेट कब से पीने लग गये। कहने लगे—सोसायटी में 'मूव'

करना पडता है विवश होकर ही मैंने यह बला मोल ली है। मैं नहीं कह सकता कि उनको यह सचमुच बला मालूम पड़ती है या नही। जान बूझकर अच्छा समझकर यदि कोई काम करे वहाँ तक तो ठीक है किन्तु विवशता की निवायन करना चरित्र की दृढ़ता साबित नही करती। महात्मा गांधी ने करीब 35 36 वष की अवस्था म ब्रह्मचय का व्रत लिया। उन्होंने कहीं लिखा था कियदि विलासिता को मैं दिल म अच्छा समझता तो मुझमे इतनी हिम्मत थी कि मैं समाज की तनिक भी परवाह न करके कई स्त्रियो से विवाह तक कर लेता। इससे चरित्र की दृढ़ता प्रकट होती है।

(३) शरीर अच्छा और मजबूत होना चाहिये। शरीर की अच्छाई का अथ यह है कि शरीर सुडौल हो, सूरत शक्ल प्यारी लगे। शरीर की मजबूती का अथ यह है कि शरीर मे जान हो बल-बूता हो मजबूती हो बर्दाश्त की ताकत हो रग पुट्ठे मजबूत हो। सुनते है कि स्पार्टन कल्चर म शरीर की मजबूती पर बड़ा जोर दिया जाता था यदि किसी के कोई अत्यन्त दुबल और रुग्ण स तान पैदा होती तो उसे पहाड पर से गिरा दिया जाता था यह प्रथा क्रूर और अमानुषिक मालूम हो सकती है किन्तु मेरा दिल तुरन्त इसकी गवाही देने को हो जाता है।

मेरी मान्यता है कि जिसका दिमाग दुरुस्त है चरित्र ठिकाने है और जिस्म मजबूत है वह सच्चे अथ म कल्चड कहा जा सकता है। इसम न शारीरिक बल की विशेष प्रशसा है न मस्तिष्क की शक्ति का आवश्यकता से अधिक समथन बिना समन्वय के सच्ची संस्कृति का निमाण नही हो सकता जहाँ तक मेरा भारतीय संस्कृति का अध्ययन है वहाँ तक मैं समझता हू कि अतीत संस्कृति मे कल्चर के सच्चे उपादान मौजूद थे-आज व ऊपरी तडक भडक और चकाचौंध स हवा हो रहे है। आज के युग मे भारतीय संस्कृति का सम्यक अध्ययन नितान्त आवश्यक और वांछनीय है।

(विवेचन' से)

रस-प्रक्रिया का त्रिकोण और पाश्चात्य समीक्षक

रवि बाबू ने कालिदास को सम्बोधित कर निम्नलिखित चतुर्दशपदी (Sonnet) लिखी थी —

तबु कि छिल नॉ तब सुख दुख यत
आशा नैराश्यर द्वन्द्व आमादेरि मतो
हे अमर कवि। छिल ना कि अनुक्षण
राज सभा षड चक्र आघात गोपन ?
कखनो कि सह नाई अपमान-भार
अनादर अविश्वास अन्याय विचार
अभाव कठोर क्रूर—निद्राहीन राति
कखनो कि काटे नाइ वक्ष शल गाथि।
तबु से सबार ऊर्ध्वें निर्लिप्त निर्मल
फुटियाछे काव्य तव सौंदर्य कमल
आनन्देर सूर्यपाने तार कोना ठाइ
दुःखदैन्यदुर्दिनेर कोनो चिह्न नाइ।
जीवनमन्थनविष निजे करि पान
अमृत या उठेछिल करे गेछ दान।*

अर्थात् हे अमरकवि कालिदास क्या तुम्हारे सुख-दुःख और राग विराग हमीं लोगों की तरह नहीं थे ? क्या तुम्हारे समय में राजनीतिक षड्यन्त्रों और गुप्त घात प्रतिघातों का चक्र प्रतिक्षण नहीं चलता रहता था ? क्या तुम्हें कभी हम लोगों की तरह अपमान, अनादर, अविश्वास और अन्याय सहन नहीं करना

* रवीन्द्र ग्रन्थावली (पंचम खण्ड काव्य-संग्रह) चैताली, पृ० 54–55

पड़ा ? क्या तुम यथार्थ जीवन के क्रूर कठोर अभावों से पीडित नहीं रहे ? और क्या तुम्हें उस निर्मम पीड़ा के कारण निद्राहीन रातें नहीं बितानी पड़ीं ? ऐसा सम्भव नहीं। तुम्हें भी जीवन के कठोर यथार्थ के कटु अनुभव हुए होंगे। पर यह सब होने हुए उन सबके ऊपर तुम्हारा सौन्दर्य कमल आनन्द के सूर्य की ओर उन्मुख हो कर निर्लिप्त निर्मल रूप में खिला है। उसमें कहीं दुःख-दैन्य और दुर्दिन के अनुभवों का कोई चिह्न नहीं है। जीवन के मन्थन से उत्पन्न विष का तुमने स्वयं पान किया है और उस मन्थन के फलस्वरूप जो अमृत उठा उसे तुम संसार को दान कर गए हो।

इस कविता को पढ़ कर ऐसा लगता है कि जिस साधारणीकरण सिद्धांत की उद्भावना भट्ट नायक ने चिन्तन के बल पर की थी उसी सत्य को रवि बाबू ने अपने प्रातिभ ज्ञान द्वारा उपलब्ध किया था। रवि बाबू की उक्त कविता में स्पष्ट है कि काव्य का सौन्दर्य कमल आनन्द-सूर्य की ओर उन्मुख होकर निर्लिप्त और निर्मल रूप में खिला करता है। काव्य सृष्टि के उदात्त क्षण में कवि राग द्वेष की भावनाओं से ऊपर उठा रहता है। भट्ट नायक के साधारणीकरण सिद्धांत में भी काव्य की इसी उच्च भाव भूमि का निरूपण हुआ है। आचार्य मम्मट के शब्दों में भट्ट नायक द्वारा प्रतिपादित रसवाद निम्नलिखित है --

' न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन रसः प्रतीयते नोत्पद्यते नाभिव्यज्यते अपितु काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादिसाधारणीकरणात्मना भावकत्व व्यापारेण भाव्यमानः स्थायी सत्वोद्रेकप्रकाशानन्दमयसंविद्विश्रान्तिसतत्वेन भोगेन भुज्यते इति भट्टनायक ।

भट्ट लोल्लट और शंकुक के उत्पत्तिवाद तथा अनुमितिवाद द्वारा ताटस्थ्य और आत्मगतत्व विषयक दोषों का निराकरण नहीं हुआ था। रस यदि रामादि मूल पात्र अथवा नट में अवस्थित है तो सामाजिक अथवा दर्शक का तटस्थ हो जाना स्वाभाविक है। यदि उसे आत्मगत माना जाए तो दुःखात्मक दृश्यों को देखने से दुःख की ही अनुभूति होनी चाहिए किन्तु वस्तुतः ऐसा होता नहीं। अतः भट्ट नायक के मतानुसार न ताटस्थ्य से और न आत्मगतत्व से रस न अनुमित होता है, न उत्पन्न होता है और न अभिव्यक्त ही होता है। काव्य और नाटक में अभिधा के अतिरिक्त एक भावकत्व व्यापार होता है जिसके द्वारा विभावादि साधारणीकृत हो जाते हैं अर्थात् सीतादि विभाव और राम सम्बन्धी रति भाव सीतात्व और रामत्वसम्बन्धों का परित्याग कर सामान्यतः कामिनीत्व और रतित्व का रूप धारण कर लेते हैं। इसके बाद भोजकत्व शक्ति

के द्वारा सत्वाद्रेक में रजागुण और तमागुण अभिभूत हो जाते हैं तथा सतोगुण के इस प्रकार से जो आनन्दात्मक ज्ञान होता है, उससे वेद्यान्तर विगलित हो जाता है। तात्पर्य यह है कि भावकत्व व्यापार से भाव्यमान स्थायी भाव ही उक्त रीति से भोजकत्व शक्ति द्वारा आस्वादित होता है।

भट्ट नायक ने जिस भावकत्व और भोजकत्व नामक शक्तिद्वय की उद्भावना की थी, उसे अभिनवगुप्त ने अप्रामाणिक ठहराते हुए भरत के रस-सूत्र की निम्नलिखित व्याख्या प्रस्तुत की —

विभावादि के संयोग अर्थात् व्यंग्य-व्यंजकभावरूप सम्बन्ध से रस की निष्पत्ति अर्थात् अभिव्यक्ति होती है।'

रस व्यंजित अथवा अभिव्यक्त होता है इसमें संभवतः दो मत न होंगे किन्तु प्रश्न यह है कि जिसे भट्ट नायक ने 'भावकत्व-व्यापार' से अभिहित किया है क्या उसका व्यंजना में अन्तर्भाव हो जाता है? अभिनवगुप्त तथा उनके अनुयायी भावकत्व को व्यंजना में अंतर्भुक्त मानते हैं इसलिए वे भावकत्व-व्यापार को अनावश्यक अप्रामाणिक तथा अमान्य ठहराते हैं। किन्तु जहां तक मैं समझता हूँ भावकत्व और व्यंजना न तो एक ही हैं और न भावकत्व का व्यंजना में अन्तर्भाव उचित ही कहा जा सकता है। यदि विचार कर देखा जाए तो रस प्रक्रिया की तीन स्थितियाँ हमारे सामने स्पष्ट हैं। पहली स्थिति अभिधा अथवा वर्ण्य विषय से सम्बन्धित है किन्तु निरी अभिधेय वस्तु काव्य का रूप धारण नहीं कर सकती। अभिधेय को आस्वाद्य बनाने के लिए कवि अथवा नाटककार को रस प्रक्रिया की दूसरी स्थिति अर्थात् कल्पना का सहारा लेना पड़ता है जिसके द्वारा रस अभिव्यक्त अथवा व्यंजित होता है। व्यंजना को तीसरी स्थिति समझिए। जिसे भट्ट नायक ने भावकत्व का नाम दिया है उसे कल्पना-स्थानीय समझ लेने पर अभिधा, कल्पना और व्यंजना के त्रिकोण द्वारा रस प्रक्रिया का रहस्य हृदयंगम किया जा सकता है।

अभिधा

कल्पना △ व्यंजना

रस प्रक्रिया के उक्त त्रिकोण को दृष्टि में रख कर भरत-सूत्र की निम्नलिखित व्याख्या प्रस्तुत की जा सकती है—

विभावादि के संयोग अर्थात् कल्प्य कल्पक भाव रूप सम्बन्ध से रस की निष्पत्ति अर्थात् व्यंजना होती है।

रस सिद्धान्त और पाश्चात्य समीक्षक

भारतीय साहित्य मे उदात्त चरित्र को लेकर आदर्शोंमुख रचनाएँ की गई। पाश्चात्य समीक्षकों की मुख्य आपत्ति यह है कि भारतीय कविता जीवन से सम्बन्ध नही रखती, ब्रह्मानन्द सहोदर रस काव्य को एकांगी बना देता है। काव्य का सीधा सम्बन्ध जीवन के चित्रण से है, न कि रस की उद्भावना से। रस के आस्वाद के लिए भारतीय नाटक और काव्य म एसे प्रतिबन्ध लगाय गए जिनसे कृत्रिमता आ गई। किसी भी असुन्दर वस्तु का चित्रण काव्यापयोगी नही है यह धारणा बन गई। जीवन के भयानक तथा अप्रिय पक्षो का आदर काव्य मे नही किया गया। साथ ही काव्य के लिए सामग्री का निर्देश इतना नपा-तुला और सीमित था कि कविगण जीवन-स्पर्शी काव्य न लिख सके। उन्होंने रस की सिद्धि के लिए आचार्यों द्वारा बताय हुए नियमो का अनुवर्तन किया, जिसमे मानव जीवन की अवहेलना हो गई। रस की उदभावना के लिए कवि कम अत्यन्त सहज समझ लिया गया, विभाव अनुभावादि की एसी स्थूल रखा खींच दी गयी कि कवि जीवन द्रष्टा न बन सके। आनन्दपयवसायी काव्य ही काय समझा गया। कीथ का यह भी कहना है कि रस सिद्धान्त पर भारतीय दशन की छाप है। श्रेष्ठ काय का श्रेष्ठ और बुरे काय का बुरा फल मिलता है इस कम सिद्धान्त का काव्य पर भी प्रभाव पडा। नियति का भयानक सघष और प्रकृति की अज्ञेयता भारतीय नाटक और काव्य से बहिष्कृत कर दी गइ। इस कारण भारतीय कविता रसमय तो रही पर जीवन स्पर्शी न हो सकी। अरस्तू ने भी काव्य के प्रयोजनो मे मनोरजन का उल्लेख किया है किन्तु यह मनोरजन जीवन की अनुकृति से सम्बद्ध है। यही कारण है कि पाश्चात्य कविता बहुमुखी जीवन अनुभूतियो को ग्रहण करती है इसके विरुद्ध भारतीय काव्य मे वैचित्र्यमयी ऊहात्मक कल्पनाओ का प्राचुय जीवन की अवहलना, मनोविज्ञान का अनादर और चरित्र चित्रण की उपेक्षा ही प्राय देखी जाती है। श्री ए० बी० कीथ ने भारतीय नाटकों की आलोचना के सिलसिले में कालिदास जैसे *विश्व विश्रुत कवि* के सम्बन्ध मे भी अपने ' संस्कृत ड्रामा'' म इस प्रकार विचार प्रकट किये हैं —

'मानव जीवन के गभीरतर प्रश्नों के लिए कालिदास ने हमारे लिए कोई सन्देश नही रख छोडा है और जहाँ तक हम देख सकते है एसे गभीरतर प्रश्नो ने उनके भी मस्तिष्क म कोई सवाल नही पैदा किया। एसा जान पडता है कि गुप्त सम्राटो ने जिस ब्राह्मणधर्मानुमोदित समाज-व्यवस्था की स्थापना की थी, उससे कालिदास पूर्णतया सतुष्ट थे और विश्व की समस्याओ ने कभी उन्हें उद्विग्न नही किया। शकुन्तला नाटक यद्यपि मोहक एव उत्कृष्ट है तथापि वह

एक ऐसी सकीर्ण दुनिया म चलता फिरता है जो वास्तविक जीवन की क्रूरताओं स बहुत दूर है। वह न तो जीवन की समस्याओं का उत्तर देने का प्रयत्न करता है और न उनका समाधान ही खोज निकालने की चेष्टा करता है। यह सत्य है कि भवभूति ने दो कर्तव्यों के विरोध के अस्तित्व की जटिलता और कठिनता के भाव दिखाये हैं और उस विरोध से उत्पन्न दु ख को भी दिखाया है पर उनके ग्रन्थों म भी इसी नियम का प्राबल्य दिखाई देता है कि सब कुछ का अन्त सामंजस्य म ही होना चाहिए। ब्राह्मण धर्मानुमोदित जीवन सम्बन्धी सिद्धान्तों ने नाटकीय दृष्टिकोण में कितनी सकीर्णता ला दी है, इस बात का सस्कृत नाटक का समूचा इतिहास प्रमाणित करता है। यही नहीं ब्राह्मण धर्मानुमोदित परम्परा को स्वीकार करने के कारण ही 'चड कौशिक' जैसे नाटक लिखे जा सके हैं, जहाँ एक प्रभाग राजा की दानशीलता से उत्पन्न ऋषि विश्वामित्र के विशिष्टजनोचित प्रतिहिंसा म तर्क और मनुष्यता के प्रति बेहद विद्रोहाचरण हुआ है।[1]

इस उद्धरण पर विचार करते हुए डा० द्विवेदी कहते हैं 'यह नहीं कहा जा सकता कि कीथ ने जो बातें कही हैं गलत है उनकी दृष्टि-भगी। सचाई गलत ढग से देखी जाने पर अवहेलनीय हो जाती है। जो मनुष्य यह मानता है कि यह ससार क्षणभगुरता के बाह्य आवरण के भीतर एक चिरन्तन सत्ता है जो सब स यो का सत्य है, और जिस आश्रय करके ही बाह्य जगत की सत्ता प्रतिभासित हो रही है, वह जीवन के गभीरतर प्रश्नो की बात मानता ही कहाँ है कि उसका उत्तर देता फिरे? उसके मन स तो जीवन के गभीरतर प्रश्नो का समाधान हो गया रहता है। बाकी प्रश्न केवल ऊपरी और भ्रमज य हैं। जिसे जीवन कहा जाता है वह भारतीय कवि की दृष्टि स कमब ध के भोग के लिए एक क्षणिक पडाव है। मनुष्य का शाश्वत निवास यह कर्म प्रपचमूलक जगत नहीं है। धन और यौवन की समस्याएं जीवन के गभीरतर प्रश्न तो है ही नही, उनका मूल्य स्वप्न म देखे हुए सुख स्वप्न के समान नितान्त क्षणभगुर है। वास्तविक और गहन प्रश्न है इस लोक स बाहर का। भारतवर्ष का कवि उस पर ही दृष्टि जमाता है। वस्तुत यदि कोई सचमुच भारतीय साहित्य का रस अनुभव करना चाहे तो उसे भारतवर्ष के इन चिरसचित सस्कारो का अध्ययन अवश्य कर लेना चाहिए। जब हम देश और काल के इन विश्वासो को ठीक ठीक समझ लेगे, तभी उनके आधार पर रचित साहित्य के अनुकूल रस रूप का परिचय पा सकेंगे। श्री कीथ जैसे विद्वान को भी जब हम विचलित होते देखते हैं तो लगता है कि

---

1 द्रष्टव्य साहित्य का मर्म श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० 33।

अभी बहुत प्रयत्न की आवश्यकता है। एक क्षण के लिए सोचिए कि यदि आप भी ग्रीक ट्रेजेडी का उसी प्रकार भारतीय संस्कारों के चश्मे से देखें तो आलोचना कुछ इस प्रकार की होगी।

ग्रीक साहित्य के श्रेष्ठ नाटककार भी माया जन्य भ्रममूलक बातों को ही जीवन का गंभीरतर प्रश्न समझते रहे। इस निरन्तर परिवर्तमान जगत के भीतर भी एक शाश्वत सत्ता है एक चिन्मय 'सत्' है जो प्रकृति के भासमान विकारों से एकदम निर्लिप्त है यह सहज-सी बात कभी उनके मस्तिष्क में आई ही नहीं। ट्रोजन की पौराणिक कल्पनाओं के आधार पर जो नाटक लिखे गये वे कभी भी जीवन के वास्तविक गाम्भीर्य तक पहुँचे ही नहीं। वे और उन्हीं के आदर्श पर लिखे गये उत्तरकालीन अंग्रेजी नाटक, एक ऐसे उद्देश्यहीन मायाजाल में उलझे हुए छटपटाते रहे जहाँ पद-पद पर परस्पर विरुद्ध जाने वाले कर्त्तव्य द्वन्द्व उन्हें सताते रहे और अन्त तक वे किसी सामंजस्य मूलक जागतिक व्यवस्था का पता न लगा सके। ग्रीक विचारधारा ने नाटकीय दृष्टि को कितना विशृंखल बना दिया है, इस बात को यूरोपियन नाटकों का समूचा इतिहास बड़े स्पष्ट रूप में दिखा देता है।

डॉ. द्विवेदी की भाँति काव्य-साहित्य पर राष्ट्रीय संस्कारों की छाप का उल्लेख स्व. प्रसाद ने भी किया है। यह निश्चय है कि काव्य पर राष्ट्र की स्थायी सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का प्रचुर प्रभाव पड़ता है। प्रसादजी ने इसका एक सुन्दर उदाहरण भी दिया है। "यह स्पष्ट देखा जाता है कि भारतीय साहित्य में पुरुष विरह विरल है और विरहिणी का ही वर्णन अधिक है। इसका कारण है भारतीय दार्शनिक संस्कृति। पुरुष सर्वथा निर्लिप्त और स्वतन्त्र है। प्रकृति या माया उसे प्रवृत्ति या आवरण में लाने की चेष्टा करती है। इसलिए आसक्ति का आरोपण स्त्री में ही है। 'नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायम् नपुंसकः' मानने पर भी व्यवहार में ब्रह्म पुरुष है माया स्त्री धर्मिणी। स्त्रीत्व में प्रवृत्ति के कारण नैसर्गिक आकर्षण मान कर उसे प्रार्थिनी बनाया गया है। देशान्तर और जात्यन्तर में इस प्रथा में भिन्नता भी पाई जाती है। इसलिए काव्य के देश जातिगत कुछ स्थायी उपादान मानने पड़ते हैं।'

प्राचीन भारतीय साहित्य में वैयक्तिक स्वाधीनता और सामाजिक विद्रोह की भावना अत्यन्त विरल है। इसका मुख्य कारण जन्मान्तर-व्यवस्था तथा कर्मफलवाद में ढूँढा जा सकता है। 'ईसवी सन् के प्रारम्भ में कर्मवाद का विचार भारतीय समाज में निश्चित रूप से स्वीकार कर लिया गया था। जो

कुछ इस जगत म हो रहा है, उसका एक अदृष्ट कारण है, यह बात निःसंदिग्ध मान ली गई थी। जन्मान्तर व्यवस्था और कर्मफलवाद के सिद्धान्त ने ऐसी जबरदस्त जड़ जमा ली थी कि परवर्ती युग के कवियों और मनीषियों के चित्त म इस भौतिक व्यवस्था के प्रति मूल म भी असन्तोष का आभास नहीं मिलता। जन्मान्तरवाद के निश्चित रूप में स्वीकृत हो जाने के कारण प्रचलित रूढ़ियों के विरुद्ध तीव्र संघर्ष एकदम असंभव था कवि कठिन स कठिन दुःखों का वर्णन पूरी तटस्थता के साथ करते थे और ऐसा शायद ही कभी होता था जब कोई कवि विद्रोह के साथ कह उठे कि यह अन्याय है, हम इसका विरोध करते हैं। [1]

किन्तु आज समय ने पलटा खाया है। आज हम ऐसे वैज्ञानिक युग म रह रहे हैं जहां वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण देशगत दूरी अत्यल्प रह गई है। आज का युग यातायात की सुविधा, रेडियो, प्रेस तथा अन्य आधुनिक सुविधाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यह सच है कि प्राचीन भारतीय नाटकों और काव्यों म वर्गगत चरित्रों की ही सृष्टि अधिकांश में हुई है, किन्तु प्रसाद के नाटकों और काव्यों म, श्री अज्ञेय के शेखर एक जीवनी जैसे उपन्यासों म तथा श्री जैनेन्द्र की अनेक कृतियों म व्यक्तिगत चरित्रों की भरमार है। आधुनिक नाटकों म भी घटनाओं का घात प्रतिघात तथा अन्तर्द्वन्द्व ही विशेष आकर्षण की वस्तु है। कीथ ने संस्कृत नाटकों और काव्यों के जिस अभाव की ओर संकेत किया था उसकी पूर्ति आधुनिक साहित्य द्वारा हो रही है। श्री दिनकर के शब्दों मे 'छायावाद हिन्दी मे उद्दाम वैयक्तिकता का पहला विस्फोट था। यह केवल साहित्यिक शैलियों के ही नहीं अपितु समग्र जीवन की परम्पराओं, रूढ़ियों, शास्त्र निर्धारित मर्यादाओं एवं मनुष्य की चिन्ता को सीमित करने वाली तमाम परिपाटियों के विरुद्ध जन्म हुए एक व्यापक विद्रोह का परिणाम था और मनुष्य की दबी हुई स्वतन्त्रता की भावना को प्रत्यक्ष दिशा मे उभारने वाला था। और फिर आधुनिक युग के प्रगतिवाद ने तो जन्मान्तरवाद और कर्मफलवाद पर प्रबल कुठाराघात किया था। नवीन जैसा कवि तो जगपति तक का टेंटुआ घोटने के लिए अपने विचार प्रकट कर चुका है। जिस दिन वह मनुष्य को लपक कर जूठे पत्ते चाटते हुए देखता है उसके मन म इच्छा होती है, कि आज मैं इस दुनिया भर को आग क्यों न लगा दूँ। इतना ही नहीं वह यह भी सोचता है।

यह भी सोचा क्यों न टेंटुआ घोंट स्वयं जगपति का।
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का॥

---

1 देखिए 'हिमालय' संख्या 2 म श्री दिनकर का लेख 'हिन्दी कविता म वैयक्तिकवाद का उत्थान' (पृष्ठ 22)

आधुनिक साहित्य मे जो विद्रोह की भावना जग रही है, वह स्पष्ट ही वत्तमान युग का प्रभाव है जिससे इन्कार नही किया जा सकता। प्राचीन साहित्याचार्यों ने नाटको और काव्यो को नियम की जिन मर्यादाओ म बाँध दिया था, आज के साहित्यकार उन्हें श्रृखलाएँ समझ कर छिन्न भिन्न कर रहे है, और यह स्वाभाविक भी है। क्योकि किसी भी साहित्यकार पर युग का प्रभाव पडे बिना रह नही सकता। आलोचना के भी नये-नये प्रकार आज चल रहे है मनोविश्लेषण तथा मार्क्सवाद को ले कर साहित्यिक कृतियो का समीक्षण किया जा रहा है, समीक्षा के पुराने सिद्धान्तो की जडें हिल रही हैं, किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी रस सिद्धान्त अपना सिर ऊँचा किये हुए है। उसकी नित्य नये ढग से व्यवस्था हो रही है। भारतीय समीक्षा मे रस सिद्धान्त एक प्रकार से काव्यानन्द का ही सिद्धान्त है। पाश्चात्य समीक्षा काव्यगत आनन्द और नीति के ऊहापोह मे व्यस्त रही किन्तु भारतीय आचार्यों ने आनन्द पक्ष को इतनी ऊँची भूमि पर पहुँचा दिया था कि नीति पक्ष का भी समाधान हो गया। इन विशेषताओ के होते हुए रस की कल्पना को एकागी और सकीर्ण नहीं कहा जा सकता। पाश्चात्य समीक्षा भाव-पक्ष और कला-पक्ष के समन्वय की समीक्षा मे व्यस्त रही। बडी कठिनाइयो के बाद क्रोचे का अभिव्यजनावाद वस्तु और रूप की एकता पर पहुँच सका किन्तु भारतीय आचार्यों ने रस सिद्धान्त के द्वारा रूप और वस्तु का समन्वय अधिक सुदृढ आधार पर किया है। किन्तु नई कविता के आधुनिक समीक्षक युगानुरूप नूतन भाव-बोध के सदर्भ मे रस सिद्धान्त को परम्परागत पुराना सिद्धान्त मान कर चलते हैं और उनके मतानुसार इस आधुनिक कविता के मूल्याकन के मानदण्ड के रूप मे ग्रहण नही किया जा सकता। आज के समीक्षक रस की अपेक्षा बिम्ब और प्रतीक-योजना पर अधिक बल देते हैं। कुछ आलोचक तो बुद्धि रस की भी चर्चा करने लगे हैं। जो भी हो इतना तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि हजारो वर्ष बीत जाने पर भी रस सिद्धान्त के सम्बन्ध मे आज भी जो विचार विमर्श होता है उससे उक्त सिद्धान्त के व्यापकत्व और उसकी प्राणवत्ता पर सम्यक प्रकाश पडता है।

(विमर्श और व्युत्पत्ति से)

समीक्षात्मक निबन्ध-२

वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता तथा ध्वनि-सिद्धांत

प्रतीकवादियों के मतानुसार काव्य में मनोवेगों का प्रत्यक्ष रूप में वर्णन नहीं किया जाता, मनोवेगों की केवल व्यंजना ही की जा सकती है। आगे चल कर एजरा पाउण्ड ने भी यही बात दोहराई कि कवि का काम प्रस्तुत करना नहीं, उसका काम भावों का अभिव्यक्त करना है। कवि मानव भावों के लिए समीकरण उपस्थित करता है जिससे भावाभिव्यंजन सम्भव हो पाता है।

टी एस एलियट की दृष्टि में भी कवि के मनोभाव स्वतः महत्वपूर्ण नहीं होते न हमारे भाव ही महत्वपूर्ण होते हैं। लेकिन हम हमारे भावों के लिए जो प्रतिदान या छाया खड़ा करते हैं वही मूल्य का केन्द्र होता है। स्थायी महत्व का काव्य वह नहीं होता जिसमें हमारे व्यक्तिगत मनोवेग उंडल दिये जाते हैं क्योंकि काव्य में भावाभिव्यक्ति के लिए एक ही पद्धति है और वह पद्धति है वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता की पद्धति जिसका तात्पर्य है ऐसा वस्तु समुदाय ऐसी स्थिति तथा घटनाओं की एक ऐसी शृंखला प्रस्तुत की जाय जो उस भाव विशेष के लिए सूत्र का काम दे सके ताकि जब वे बाह्य तथ्य, जिनकी परिणति संवेदनात्मक अनुभूति में होती हो उपस्थित किए जाएँ तो तुरन्त भावोद्रेक हो जाय।

वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता के निदर्शनार्थ 'कवितावली' का निम्नलिखित छन्द प्रस्तुत है –

> दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माही।
> गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि बेद जुवा जुरि विप्र पढाही।
> राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परछाही।
> यातें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारति नाही।

अर्थात "सब सुंदरी सौभाग्यवती स्त्रियां एकत्र होकर मंगलाचार के गीत गाती हुई दुलह श्री रामचन्द्रजी तथा दुलहिन श्री सीताजी को सजा कर सुंदर मन्दिर मे ले गई। लहकौर (लघुक्वर) खिलाने के बाद जुआ आरम्भ हुआ। उस समय ब्राह्मण वेदध्वनि करने लगे। सीताजी कंकरण के नग म श्री रामचन्द्रजी की परछाही देखने लगी। इससे (पासा फेंकने का) सुध भूल गई। हाथ हटाते ही ककरण के नग मे स्थित रामचन्द्रजी के रूप का प्रतिबिम्ब नही देख सकूंगी, इस भय मे हाथ टेके रह गई और क्षण भर भी हाथ को नही हटाया (टकटकी लगाए उसी प्रतिबिम्ब को देखती रही)।'

उक्त पद्य मे वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता के निम्नलिखित अवयव द्रष्टव्य है —

वस्तु-समुदाय—राम-सीता (आलम्बन विधान)

ककरण के नग म राम का प्रतिबिम्ब (उद्दीपन विधान)

स्थिति—सौभाग्यवती स्त्रियो का मगलाचार गायन, दूलह-दुलहिन को सजा कर सुदर मन्दिर मे ले जाना तथा लहकौर खिलाने के बाद जुआरम्भ।

घटनाओं की शृ खला—राम के रूप का एकटक देखना तथा कर को टेके रखना (अनुभाग)

किन्तु घटना-शृ खला मे ये बाह्य चेष्टाए ही नही आएँगी इसी म हर्ष जडता आदि सचारी भावों का भी समावेश हो जाएगा।

भावोद्रेक—रति स्थायी भाव की शृ गार रस म परिणति।

एलियट द्वारा प्रतिपादित उक्त सभी अवयव नाटक मे तो आसानी से ढूढे जा सकते है किन्तु सम्भव है प्रत्येक कविता म कभी एक दो तथा कभी सम्पूर्ण अवयव उपलब्ध हो सकें। भारतीय रसशास्त्रियो के मतानुसार तो जहा एक अवयव उपलब्ध हो वहा शेष ऊह्य माने जाएँगे।

यदि केवल यह कहा जाता कि सीता राम से प्रेम करती है तो वह रसास्वादन न हो पाता जो कवितावली मे से उदधृत उक्त पद्य द्वारा होता है। इसी प्रकार शरीर क्षणभगुर है, इस तथ्य का संवद्य बनाने के लिए कबीर को भाव के अनुरूप निम्नलिखित 'वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता' का आश्रय लेना पड़ा—

नौ द्वारो का पींजरा ताम पछी पौन।
रहिबे को अचरज है, गए अचम्भा कौन ॥

जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी दूसरे को द्रव्य का दान कर देता है काव्य जगत में भावों का वैसा सीधा दान सभव नहीं। इसीलिए टिलयड को कहना पड़ा, समस्त काव्य तियक होता है प्रत्यग काव्य जैसी कोई वस्तु नहीं होती।

मेटाफिजिकल कवियों के सम्बन्ध में विवेचन करते हुए एलियट ने लिखा था कि वे अपने मन तथा अनुभूति की दशाओं के लिए 'शब्द समीकरण' ढूंढने के काय में अधिक से अधिक व्यस्त थे। जान पड़ता है कि यहां एलियट ने 'वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता' के पर्याय के रूप में ही 'शब्द-समीकरण' का प्रयोग किया है।

अन्यत्र एलियट ने यह भी कहा है कि कवि की कारयित्री प्रतिभा तभी सफल कही जायगी जब भावावेग कविता में जीवनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो जाय न कि कलाकार के इतिवृत्त में अपनी प्रतिभा से कवि शब्दों में ऐसी व्यजना-शक्ति भर देता है कि उसके बाद व्यजना से अनुप्राणित होकर वे स्वयं बोलने लगते हैं फिर कवि के लिये कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। वह तो शब्दों को जीभ देकर अलग हो जाता है, उसके बाद कवि नहीं कविता ही सब कुछ हो जाती हैं। कवि का भावावेग तो चिरस्थायी न होकर अल्पकालीन होता है किन्तु वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता का आश्रय लेकर वह जिस भावावेग को काव्यमयी भाषा के द्वारा वाणी देता है, वह कवि की कविता में अमर हो जाता है।

एजरा पाउण्ड की दृष्टि में बिम्ब वह वस्तु है जो क्षणावधि में बौद्धिक तथा भावात्मक सकुलता को प्रकट कर देती है। काव्य में बिम्ब विधान आवश्यक है क्योंकि केवल विचारों को वाणी देने अथवा मस्तिष्क के व्यायाम मात्र से रसोद्रेक सम्भव नहीं। किन्तु कभी-कभी कवि गण दार्शनिकता का आश्रय लेकर गूढ विचारों की अभिव्यक्ति करने लगते हैं जिसमें मनोवेग और विचार दोनों की सकुलता दृष्टिगोचर नहीं होती। शेली की निम्नलिखित प्रसिद्ध पंक्तियां लीजिये —

We look before and after
And pine for what is not
Our sincerest laughter
With some pain is fraught
Our sweetest songs are those
That tell of saddest thought

इस प्रकार की पक्तिया चि तनशील कवि की पक्तियाँ हो जाती हैं जो विरोधाभास के कारण मर्मोक्तिका रूप तो धारण कर लेती है किन्तु जिनमे बौद्धिकता और भावात्मकता का वह ऐक्य नही मिलता जो एजरा पाउण्ड के मतानुसार बिम्ब की विशेषता है।

इसके विपरीत पतजी की निम्नलिखित पक्तियो मे भाव और विचार की एकता का अच्छा निर्वाह हुआ है—

और भोले प्रेम क्या तुम हो बने
वदना के विकल हाथो से, जहा
झूमत गज-से विचारते हो वही
आह है उन्माद है, उत्ताप है।
पर नही तुम चपल हो अजान हो
हृदय है मस्तिष्क रखते हो नही
बस बिना सोचे हृदय को छीन कर
सौप देते हो अपरिचित हाथ मे।

यह भी कहा जा सकता है कि प्रेम की अन्धता की व्यजना के लिये वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता का अच्छा निदर्शन उक्त छ द मे प्राप्य है।

ध्वनिवादियो के मतानुसार विभावादि के द्वारा रस ध्वनि ही सर्वोत्तम काव्य का रूप प्रस्तुत करता है तथा एलियट की दृष्टि मे भी वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता के माध्यम से रसोद्रेक ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता और ध्वनि सिद्धान्त म बहुत कुछ साम्य है।

किन्तु इस सन्दर्भ मे कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न भी सामने आते हैं जिन पर विचार करना अप्रासगिक न होगा। स्वभावोक्ति म वस्तुओ का यथावत् तथा प्रत्यक्ष वर्णन किया जाता है किन्तु फिर भी वहा रसोद्रेक तो है ही। इससे स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष बिम्ब भी कभी कभी सवेदनात्मक बिम्ब का रूप धारण कर लेता है। दूसरी बात यह है कि कविता मे किसी बिम्ब को सवेदनात्मक शक्ति इसलिये प्राप्त हो जाती है कि वह वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता का उदाहरण प्रस्तुत करता है और मात्र इसलिये नही कि प्रत्यक्ष रूप मे अभिव्यक्त होने के स्थान मे वह परोक्ष रूप से कुछ व्यजित करने की क्षमता रखता है।

'सात बज गए' कहने से ध्वनित हो सकता है कि सिनमा के लिए चलना चाहिए अथवा यात्रा स्थगित कर देनी चाहिए। इसी प्रकार वक्ता विशेष की दृष्टि मे उक्त एक वाक्य से अनेक अर्थ ध्वनित हो सकते हैं किन्तु फिर भी रसहीन होने से यह वाक्य काव्य की श्रेणी मे नही आ सकता। यह सच है कि रस प्राय ध्वनि के माध्यम से व्यग्य होता है किन्तु रस यदि काव्य की आत्मा है तो वह किसी भी माध्यम से आए उक्ति की रसात्मकता ही काव्य की अनिवार्य शर्त है न कि उसकी ध्वन्यात्मकता। यह भी प्रश्न उठ सकता है कि वस्तु से जहा वस्तु ध्वनित होती है अथवा वस्तु से जहा अलकार ध्वनित होता है, वहा काव्य की सत्ता कैसे स्वीकार की जा सकती है क्योकि काव्य मे तो रस ध्वनित हुआ करता है। अभिनवगुप्त ने यह कह कर इस शका का समाधान कर दिया है कि वस्तु ध्वनि भी अत मे रस ध्वनि मे परिणत हो जाती है। इसी प्रकार अलकार ध्वनि के सबध मे समझिए। इससे यह निष्कर्ष निकलता है ध्वनि की टेकनीक से रस निष्पत्ति नहीं होती बल्कि रसोद्रेक होता है इसलिये वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता का सिद्धान्त समीक्षा के क्षेत्र मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतीत होने लगता है।

ध्वनिशास्त्रियो ने उस काव्य को मध्यम कोटि का काव्य ठहराया है जिसमे व्यग्य गौण हो और वाच्यार्थ की प्रधानता हो। इस प्रकार के गुणीभूत व्यग्य का एक उदाहरण लीजिए —

> अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तत्पुरस्सर ॥
> अहो विचित्रा दैवस्य गतिर्नास्ति समागम ।

अर्थात सन्ध्या अनुरागवती है दिन उसके आगे आगे चलता है तथापि दैव की विचित्र गति तो देखिए कि सन्ध्या और दिन का समागम नहीं हो पाता। व्यग्य यह है कि विधि की विडम्बना से अत्यन्त समीप रहने वाले दो प्रेमी (नायिका और नायक) परस्पर मिल नही पाते।

उक्त पद्य मे वाच्यार्थ प्रधान है और व्यग्यार्थ गौण है। अत यहाँ व्यग्य के गुणीभूत होने के कारण उत्तम कोटि के काव्य का अभाव है जहाँ वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यग्यार्थ प्रधान होता है।

वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता की दृष्टि से यदि उक्त पद्य का विवेचन किया जाय तो कहा जा सकता है कि कवि जिस भाव की व्यजना करना चाहता है उसके लिए जो वस्तुनिष्ठ प्रतिमान सामने लाए गए हैं वे न केवल बहुत उपयुक्त

हैं किन्तु स्पष्ट, निश्चित तथा साहित्यिक परम्परा द्वारा अनुमोदित भी है[1] अत व्यग्य के गुणीभूत हो जाने के कारण ही इस पद्य की रसात्मकता कम हो जाती है ऐसा क्यो मान लिया जाय ? मेरी दृष्टि मे वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता को लक्ष्य म रख कर ध्वनि सिद्धान्त पर पुनर्विचार अपेक्षित है।

अन्त म यह कहना आवश्यक है कि वस्तुनिष्ठ प्रतिरूपता तथा ध्वनि सिद्धान्त मे बहुत कुछ साम्य है किन्तु आग्रह की कट्टरता के साथ मैं यह नही कहना चाहता कि दोनो सिद्धान्त एक ही हैं। दो सिद्धान्तो की पारस्परिक तुलना यद्यपि खतर से खाली नही है तथापि इस प्रकार की तुलना की भी अपनी उपयोगिता है सभवत इसमे दो मत न होग।

('अनुसधान और आलोचना' मे)

---

1 Objective co relative is a specified figuratively fortified, and permanent object that literary tradition has evolved for the correspondinsg emotion —Krishna Rayan

तुलसी का राज्यादर्श

हमारे देश म शासक अथवा राजा को बडा महत्त्व दिया गया है। मनु क मतानुसार ईश्वर न सब की रक्षा के लिए राजा की सृष्टि की है।[1] नर रूप मे वह एक प्रकार से देवता ही है।[2] गोस्वामी तुलसीदास ने भी उस ईश्वर का अंश कहा है।[3] शासक के अवगुण किसी भी प्रकार क्षम्य नहीं हैं क्योकि जनता भी राजा का ही अनुसरण करती ह। तुलसीदास कहते हैं कि राजा म यदि एक अवगुण होता है तो प्रजा म तीन हो जाते हैं —

'त्रिविध एक विधि प्रभु अगुण प्रजहि सँवारहि राव।" (तुलसी सतसई) इसके विपरीत यदि राजा गुणी हुआ तो सब प्रकार स प्रजा का सुधार लेता है।

आज जब मानव मूल्यो का विघटन हो रहा है और शासक-वर्ग भी अपने कर्त्तव्यो और दायित्वो के प्रति जागरूक नही है रामचरितमानस के भरत की निम्नलिखित उक्ति भली भाति ध्यातव्य है —

कहौं साच सब सुनि पतिआहू ।
चाहिय धरमसील नरनाहू ॥

महाकवि कालिदास के शब्दों मे प्रजा का अनुरंजन करने के कारण ही राजा अपने नाम को सार्थक करता है।[4] गोस्वामी तुलसीदास के मतानुसार भी वह राजा जिसके राज्य म प्रजा सुखी नही रहती, अवश्य नरक का अधिकारी होता है —

1 रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभु । (मनु० 7 3)
2 महती देवता ह्येषा नर रूपेण तिष्ठति ।
3 साधु सुजान सुशील नृपाला । ईस अंश भव परम कृपाला । (रामचरितमानस)
4 राजा प्रकृतिरंजनात (कालिदास)

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।'

महाभारत मे तो यहाँ तक कहा गया है कि प्रजा रक्षण म असमथ राजा को पागल कुत्ते की भाति मार डालना चाहिए।[5]

प्राचीन भारत मे राजा का निर्वाचन हाता था या नही, इस विषय म एकमत्य का अभाव है। ऋग्वेद मे अवश्य एक स्थल पर विशो द्वारा राजा के निर्वाचन का उल्लेख मिलता है। अथववद म भी एक स्थान पर विशो द्वारा राजा क वरण की कामना की गई है —

(क) ताईं विशो न राजान वृष्णना वीमत्सवो अप वत्रादतिष्ठन।
(ऋ० 10।124।8)

(ख) त्वां विशो वृणता राज्याय। (अथर्व० 3।4।2)

किन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि उत्तर-वैदिक काल के बहुत पहले ही राजा का पद आनुवंशिक बन गया था। वाल्मीकि रामायण मे राम के युवराज बनाये जाने का जो उल्लेख मिलता है, उससे ऐसा नही लगता कि इसम प्रजा का काई हाथ था।

किन्तु जहाँ तक रामचरितमानस का सम्बन्ध है, राजा दशरथ के मन म राम को युवराज बनाने की इच्छा जब उत्पन्न होती है, तो वे सबस पहल अपन गुरु वशिष्ठ के सामने अपना विचार रखते है और कहत है कि सवक, मत्री सब नगर निवासी तथा शत्रु मित्र उदासीन, सभी को रामचन्द्र वसे ही प्रिय है वैस मुझको। यह मगल-वृत सुन कर गुरु वशिष्ठ कहते है —

'बेगि बिलबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिन सुमगल तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु।।'

इसक बाद राजा अनदित हाकर महल म आत है और सवको तथा मत्री सुमन्द को बुला कर कहते हैं —

"जौ पाँचहि मत लाग नीका।
करहु हरषि हिय रामहि टीका।।"

---

5 अहवो रक्षितेत्युक्त्वा यो न रक्षति भूमिप।
स सहत्य निहतव्य श्वेव सो माद आतुर ।। (महाभारत 13 96 35)

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि तुलसी के राम युवराज पद पर निर्वाचित भले ही न हुए हों, फिर भी उनके राज्याभिषेक की स्वीकृति गुरु, सेवक, सचिव सभी से ली गई है। राजा दशरथ ने तो असंदिग्ध शब्दों में कहा है कि यदि प्रजा को अच्छा लगे तो राम को युवराज बनाना चाहिए।

आदर्श राजा के सम्बन्ध में गोस्वामीजी ने दोहावली में अच्छे विचार प्रकट किये हैं। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहे उल्लेख्य हैं—

'मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित विवेक ॥1॥

(दोहावली, 507)

बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोय।
तुलसी प्रजा सुभाग तें, भूप भानु सो होय ॥2॥'

(दोहावली 508)

प्रथम दोहे में राजा को मुख की तरह बतलाया गया है जो खान पान में एक होते हुए भी सब अंगों का विवेक-पूर्वक पालन-पोषण करता है। दूसरे दोहे में राजा की समता सूर्य से की गई है जो अपनी किरणों से जल खींचता है पर किसी को पता नहीं चलता कि जल कैसे, कब खींच लिया गया, किन्तु वही जल जब वर्षा के रूप में फिर पृथ्वी पर लौटता है तो सभी उसे बरसता हुआ देखते हैं। तुलसीदास का तात्पर्य यह है कि अच्छा राजा भी प्रजा से कर के रूप में धन ग्रहण करता है किन्तु वह इस तरह से वसूल करता है कि उसका भार प्रजा पर पड़ता हुआ लक्षित नहीं होता और उसी कर को वह ऐसे लोकोपयोगी कार्यों में लगाता है जिनके प्रत्यक्ष परिणामों से प्रजा आनंदित हो उठती है। इसमें परोक्ष कर (Indirect Taxation) की ओर संकेत है जिसका भार अलक्षित ही रहता है।

लार्ड ऐक्टन की प्रसिद्ध उक्ति है- 'Power corrupts and adsolute power corrupts adsolutely' अर्थात शक्ति मनुष्य को भ्रष्ट कर देती है और निरंकुश शक्ति उसे सर्वथा भ्रष्ट कर देती है। प्रभुता और मद के पारस्परिक अनिवार्य सम्बन्ध की बात गोस्वामी तुलसीदास ने भी कही है जिसकी पुष्टि के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रमाण हैं –

नहिं कोउ अस जनमेउ जग माहीं।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥

यद्यपि उक्त पंक्तियां "रेखा खींच कर" कही गई हैं तथापि गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा चित्रित भरत इस सम्बन्ध में अपवाद हैं। गोस्वामीजी के ही शब्दों में —

रामचन्द्र ने तो भरत के लिए यहां तक कह दिया था —

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी।
भरत भूमि रह राउरि राखी॥'

जहां तक राज्यादर्श है गोस्वामी तुलसीदासजी के लिए राम-राज्य आदर्श राज्य है। हमारे युग के महापुरुष गांधीजी को भी राम राज्य के आदर्श ने अत्यधिक आकृष्ट किया था। महात्माजी से जब यह प्रश्न किया जाता था कि आपकी कल्पना के स्वराज का क्या रूप होगा, तो वे उत्तर देते समय राम राज्य का उल्लेख कर देते थे। इस प्रकार वर्तमान युग में भी "राम-राज्य" की महिमा इतनी बढ़ी कि यह पद आदर्श राज्य के लिए मुहावरा ही बन गया।

गोस्वामी तुलसीदासजी इस बात को भली भांति जानते थे कि पेट की आग बडवाग्नि से भी बडी है।[1] इसलिए उनके राम-राज्य में कोई दरिद्र, दुखी और दीन नहीं हैं और न वहां किसी प्रकार का दैनिक अथवा भौतिक ताप ही है।

"नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
× × ×
दैहिक दैविक भौतिक ? तापा।
राम राज नहिं सपनेहुँ ब्यापा।'

निश्चय ही तुलसी के राम राज्य का आदर्श अनन्त काल तक प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा।

('चिंतन के आयाम' से)

---

1 दारिद दसानन दबाई। दुनी दीनबंधु।
आगि बडवागितें बडी है, आगि, पेट, की॥ (कवितावली)

वीर सतसई मे राष्ट्रीयता

हमारे देश के इतिहास म सन 1857 का स्वतंत्रता-संग्राम एक अद्वितीय घटना है। "भारतीय इतिहास म ऐसी कोई अन्य घटना नही मिलती जिसमे दिल्ली के कुछ पश्चिम से लेकर बिहार तक के इलाके के स्थानीय शासक और हिन्दु मुसलमान ब्राह्मण, ठाकुर मुगल, पठान मराठे आदिवासी औरतें आदि विभिन्न समूहो के लोग स्वेच्छा से एक सामान्य शत्रु के विरुद्ध एक होकर लडे हो। इसमे हो हिन्दुस्तानियो ने हिन्दुस्तानियो के रूप म शासन की चुनौती का सामना करना चाहा था।

उक्त संग्राम के संबन्ध म दो प्रकार के मत सुनाई पडते हैं। पहले मत के अनुसार सन् 1857 का विप्लव गदर बगावत अथवा सैनिक विद्रोह मात्र था उसका कोई राष्ट्रीय आधार न होने से राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास म उसे कोई महत्व नहीं दिया जा सकता। डिस्कवरी आफ इन्डिया नामक अपने ग्रन्थ म पंडित नेहरु ने सन 57 ई के उक्त विप्लव का उल्लेख करते हुए लिखा था।

"यह स्पष्ट है कि उस समय उस राष्ट्रीय भावना का अभाव था जिसने देश को एकता के सूत्र म ग्रथित किया है। आधुनिक ढग के राष्ट्रवाद का प्रादुर्भाव होना अभी बाकी था। भारत को अभी एक बडे संकट और विषाद म से गुजरना था जिससे वह सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्ति के मंत्र को सीख सके। एक भाग हुए उद्देश्य सामन्तवाद के लिए स्वतन्त्रता नही मिल सकती थी। *

किन्तु इतना होते हुए भी नेहरूजी ने इसे सैनिक विद्रोह मात्र नहीं माना। उन्ही के शब्दो म

It was much more than a military mutiny and it

* Discovery of India P 302

spread rapidly and assumed the character of a popular rebellion and a war of Indian Independence' Discovery of India P 301

जो भी हो इतना अवश्य स्वीकार करना होगा कि भारत के इतिहास मे प्रथम बार स्वतत्रता प्राप्ति के लिऐ अग्रेजी शासन को चुनौती दी गई। विदेशी शासन को दूर करने के सम्बन्ध मे एक चेतना जागृत हुई जिसके महत्त्व का अब मूल्यन नही किया जा सकता। सतसईकार के शब्दो मे

इन्हकी गिरा एक री, भूले कुल साभाव।
सूरा आलस ऐस म, अकज गमायो आव।
इण बला रजपूत व, राजस गुण रजाट।
सुमरण लग्गा वीर सब, वीरा रो कुल वाट॥

अग्रेजो का एकच्छत्र आधिपत्य देखकर भारत के शूरवीर अपने कुल व स्वभाव को भूल गए थे अग्रेजो की दासता उन्होने स्वीकार कर ली थी। उन्होने आलस्य और भोग विलास म जीवन को व्यर्थ ही गवा दिया था।

किन्तु 1857 मे वीरता व गुण म रजित हो गए और व वीरो के कुल माग का स्मरण करने लगे। तात्पर्य यह है कि वे पराधीनता के बन्धन को तोडने के लिए तैयार हो गए।

कवि द्वारा रचित वीर सतसई के दोहो ने भी इस स्वातंत्र्य चेतना की जागति हेतु उद्दीपन का काम किया

नखो रजोगुण ज्यो नरां, ना पूरो ऊफाण।
वे भी सुणता ऊफणे, पूरा वीर प्रमाण॥

अर्थात जिन मनुष्यो मे वीरत्व का गुण नही है और न पूरा जोश है, वे भी सतसई को सुनने पर पूरे वीरो के समान जोश से भर जाएगे।

और उनका तो कहना ही क्या

जे दोही पख ऊजला, जूझण पूरा जोध।
सुणतां वै भड सौगुणा, वीर प्रकासण बोध॥

जिनके मातपक्ष और पित पक्ष दोनो उज्ज्वल है तथा जो युद्ध करने मे पूरे योद्धा हैं, वे ता इसे सुन कर सौगुना वीरता प्रकाशन का बाध प्राप्त करेंगे।

वीर सतसई में स्थान-स्थान पर वीर के कुल माग की महिमा का स्तवन तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु मृत्यु का जय-जयकार हुआ है।

> आ घर खेती ऊजली, रजपूतां कुल राह
> चढ़णो धव लारां चिता वढ़णो धारां वाह।
> घरै सुजस प्रभुता उठे, अवसर मरियां आय।
> मरण घरां रै मांगियो, जम नरकां ले जाय॥

नारी का पति के पीछे चितारोहण तथा पति का तलवार की धारा म जाना यह राजपूतों के कुल का माग है उनके घर की उजली खेती है

इस म राष्ट्रीयता की धारणा म समय-समय पर परिवर्तन होता रहा है। किन्तु आधुनिक विचार-धारा के अनुसार यह भी कहा जा सकता है कि राष्ट्रीयता वह विचार है, वह भावावेश है जो एक विस्तृत जन-समूह को (समस्त मानव जाति का नहीं) एक विशेष राज्य सूत्र म बांधती है एक विशेष संस्कृति तथा एक एक विशेष प्रकार की जीवन पद्धति की ओर उन्मुख करती है। आधुनिक राजनैतिक सिद्धान्तों के व्याख्याताओं के मतानुसार राष्ट्रीयता कौटुम्बिक सम्बन्ध या जातीयता से ऊपर की वस्तु है।

राष्ट्रीयता की आधुनिक विचारधारा की कसौटी पर वीर सतसई की राष्ट्रीयता भले ही पूर्ण रीति म खरी न उतरी हो तथापि सतसई म, जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है राष्ट्रीय भावना के निम्नलिखित रूप उपलब्ध होते हैं —

1 शूरवीरों की अकर्मण्यता और विलासिता पर कवि की खिन्नता
2 स्वाधीनता संग्राम के समय वीरों की कर्त्तव्य भावना पर उल्लास
3 वीरों के कुल-माग का स्तवन
4 देश-हेतु मृत्यु का जय-जयकार अथवा मरण महोत्सव
5 भूमि-प्रेम
6 सती के गौरव की व्यंजना
7 शूरवीरों का नाम स्मरण
8 कायर की भर्त्सना
9 स्वातन्त्र्य-संग्राम की असफलता पर क्षोभ और सतसई का अधूरा रह जाना।

सन 1857 के स्वातन्त्र्य-संग्राम के सम्बन्ध म यह अवश्य कहा जायगा कि उसम राजा और नवाबों आदि का तो सहयोग था किन्तु एक बड़े पैमाने पर

भारतीय जनता न उसम याग दिया हो ऐसा नही कहा जा सकता। फिर भी हिन्दू मुसलमान सभी ने उसमे भाग लिया, इसलिए आधुनिक राष्ट्रीयता की झलक भी उसम थी ही। किन्तु वीर सतसईकार के किसी दोहे मे ऐसा प्रत्यक्ष चित्रण नही है जिसमे हिन्दू मुसलमान सभी ने मिलकर एक विदेशी शक्ति के विरुद्ध लोहा लिया हो, परोक्ष सकेत अवश्य ढूढे जा सकत हैं। हा, कवि द्वारा लिखे गए पत्रो की बात अलग है।

उचित अवसर पर आत्म-बलिदान से इस लोक मे सुयश और परलोक मे प्रभुता की प्राप्ति होती है। घर मे मरना यम के नरको मे जाना है।

हमारी भूमि पर दूसर का अधिकार न हो इस भाव के अनेक दोहे सतसई मे उपलब्ध हैं। शिरोमणि दोहा है —

> इला न देणी आपणी हालरिये हुलराय।
> पूत सिखावै पालणैं, मरण बडाई माय॥

धरती की रक्षा के लिए आत्म-बलिदान का पाठ वीर माता अपने पुत्र को पालन मे ही सिखला देती है।

पुत्र के उत्सग-हेतु मगन और बहू के सती होने स जो प्रसन्नता होती है, उसकी अभिव्यक्ति निम्नलिखित दोहे मे हुई है —

> आज घर सासू कहै हरख अचानक काय।
> बहू बलेवा हूलसै पूत मरेवा जाय॥

वीर सतसई मे राष्ट्रीय भावना कई रूपो म प्रकट हुई है। राष्ट्र की रक्षा अथवा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जो युद्ध किया जाता है उसम पति यदि युद्ध से भागकर आ जाय अथवा पुत्र कायरता दिखलाए तो वीर प्रसविनी नारी को यह किसी भी तरह सह्य नही—

> सहणी सबरी हूँ सखी दो उर उलटी दाह।
> दूध लजाणै पूत सम, वलय लजाणै नाह॥

दूध को लजाने वाले पुत्र और चूडे को लज्जित करने वाले प्राणनाथ को वह सहन नही कर सकती।

शूरवीरो के नाम का स्मरण और उनके प्रति श्रद्धा भी राष्ट्रीय भावना का ही एक रूप हैं—

> विण माथै बाढै दला पौड करज उतार।
> तिण सूरा रो नाम ले, भड बाधे तरवार॥

स्वतन्त्रता– प्राप्ति के लिए स्थान - पर परोक्ष रूप स वीरा के प्रोत्साह नार्थ सकेत भी उपलब्ध है—

> सूता घर घर आलसी वृथ गुमावै वस।
> खग धारा घाडाँ खुराँ दाबे अजका देस॥

अर्थात आलसी लोग घरा में सोए हुए अपनी आयु को व्यर्थ गवा रहे है। उत्साही वीर ही तलवारो की प्रखर धारा के बल से और घोडो के खुरो से बहुत से प्रदेश दबाया करते हैं।

वीर सतसई म स्थान स्थान पर कायर की भर्त्सना की गई है। वीर नारी उस देश पर बलिहारी होती है जहाँ सिर मोल बिकते हैं।

> नहँ पडोस कायर नरा हली वास सुहाय।
> बलिहारी जिण देसडे, माथा मोल बिकाय॥

देश की रक्षा का यदि प्रश्न हो तो तोरण-वन्दनाथ जाता हुआ दूल्हा भी युद्ध स्थल पर पहुँच कर अपना प्राणोत्सर्ग कर देता था।

> तोरण जाता वाहरु सुणियाँ अजके बीद।
> लाखाँ हण सीधी सखी मोटे पडवे नीद॥

देश–रक्षार्थ प्राण द देने वाला योद्धा मर कर भी अमर हो जाता है।

> तन दुरग अर जीव तन, कढणौ मरणौ टेक।
> जीव बिणटठा जे कढो नाम रहीजे नेक॥

शत्रुओ के सामने किले को छोड कर भाग जाना तो जीवित मरण के तुल्य है किन्तु इसके विपरीत शत्रुओ स लोहा लेते हुए अपने प्राणो की आहुति दे देना अमर हो जाना है उक्त दोहे म तत्कालीन राजपूतो की स्थिति पर भी व्यग्य है।

सन 1857 का सग्राम सफल नही हुआ। अत परोक्ष रूप से कवि को कहना पडा —

> जिण बन भूल न जावता, गद गवय गिडराज।
> तिण बन जबुक ताखडा, उधम मडे आज॥

जिस वन मे भूलकर भी गजेन्द्र, गडे तथा शूकरराज नही आते थे, उसी वन में आज शृगाल भी उधम मचा रहे हैं। किसी देश के वीरा की दुर्दशा हान पर यही दयनीय स्थिति हो जाती है।

स्वातत्र्य-सग्राम की विफलता से कवि की प्रेरणा का स्रोत सूख गया। उस दुखी हृदय से कहना पडा

> डाहै गिड वन वाडिया, द्रह ऊडा गज दीह।
> सीहण नेह सकैक तो, सहल भुलाणो सीह॥

शूकर वन और वाडिया का विध्वस कर रहे हैं और गहरे जलाशया को गजराज गदला कर रहे हैं। इससे लगता है कि सिंहनी के स्नेह म पड कर सिंह शायद सैर सपाटे करना भी भूल गया।

देश पर फिर पारधीनता के वादल छा गये और सभव है कि प्रेरणा स्रोत के सूख जाने के कारण वीर सतसई भी अधूरी ही रह गई।

स्टालिन के अनुसार 'राष्ट्रीयता स तात्पय एतिहासिक दष्टि स निर्मित उस सुदढ जन समुदाय स है जिसका विकास भाषा, प्रदेश, आर्थिक जीवन और मानसिक दष्टिकोण के आधार पर हाता है। आर्थिक जीवन और मासिक दष्टिकोण की अभिव्यक्ति देश विशेष की सस्कृति म होती है।'

शोध परख आलेख-1

राजस्थानी कहावते

धर्म और जीवन-दर्शन

इस शीपक के अन्तर्गत ईश्वर धर्म भावना शकुन, लोक-विश्वास तथा भाग्य आदि से सम्ब ध रखने वाली सभी प्रकार की कहावतो का समावेश किया जा सकता है। सबसे पहले ईश्वर सम्बन्धी कहावतो को लीजिये—

(क) ईश्वर-सम्बन्धी कहावतें

प्राय दुनिया की सभी भाषाओं में ईश्वर विषयक कहावतें मिलती है। आज तो जीवन की जटिलता तथा विचार स्वातन्त्र्य की भावना के कारण यहा तक कहा जाने लगा है कि ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं ईश्वर ने मनुष्य को नहीं बनाया, मनुष्य ने ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ईश्वर का निर्माण कर लिया है किन्तु राजस्थान में ऐसी कोई कहावत शायद ही मिले जिसमें ईश्वर के अस्तित्व पर सन्देह प्रकट किया गया हो। हा, ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने वाली कहावतें यहा सहज ही मिल जायगी। उदाहरण के लिए ऐसी दो कहावतें लीजिये —

(1) कण-कण भीतर रामजी, ज्यूं चकमक में आग।

जिस प्रकार चकमक पत्थर में आग रहती है उसी प्रकार कण-कण के भीतर ईश्वर का निवास है।

(2) रामजी ऊपर बैठ्यो देखे है।

भगवान ऊपर से सभी के भले-बुरे कर्मों को देख रहा है। इसलिए मनुष्य को यह समझकर कि मुझे कोई नहीं देखता कुकर्म नहीं करना चाहिए।

बहुत सी कहावतों द्वारा ईश्वर की उदारता दयालुता और न्याय-बुद्धि का पता चलता है। यथा

(1) कीडी ने कण हाथी ने मण।

ईश्वर चींटी को उदर-पूर्ति के लिए जहां कण भर देता है, वहा हाथी को मन भर दे देता है अर्थात् वह छोटे-से छोटे प्राणी से लेकर बड़े-से-बड़े जीव की आवश्यकताएं पूरी करता है।

(2) आंधा की माखी राम उडावे।

अन्धे की मक्खी भगवान उड़ाता है अर्थात वह निर्बल का सहायक है।

(3) आखर रामजी के घर न्याय है।[1]

अन्त में भगवान के यहां न्याय अवश्य है।

---

1 मिलाइये—
'देर है, अन्धेर कोनी।'

(४) वदी राम वैर।

बुराई से भगवान की शत्रुता है।

एक कहावत मे राम नाम की महिमा का इस प्रकार बखान किया गया है—

' रामजी को नाव सदा मिसरी, जद चावे जद गूदगिरी।"

भगवान् का नाम लेने से मेवे-मिसरी मिलते रहते हैं अर्थात् मनुष्य हमेशा आनन्दपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है।

किन्तु भगवान का स्मरण करने वालो मे कुछ लोग तो श्रद्धा से ऐसा करते हैं और कुछ लोगो को विवश होकर ऐसा करना पड़ता है। एक कहावत लीजिये —

' हर हर गंगा गोदावरी किमेक सरधा अर किमेक जोरावरी।'

स्नान करते समय जाडे के दिनो मे जो भगवान् का नाम लिया जाता है उसमे कुछ तो श्रद्धा और कुछ शीत का भय दोनो का सम्मिश्रण रहता है।

निम्नलिखित कहावतो मे ईश्वर को सर्वशक्तिशाली ठहराया गया है

(1) राम सू जोर नही।

भगवान् के आगे किसी का वश नही चलता।

(2) राम को अर राजा को सिर ऊपर कर मेलो है।

भगवान और राजा जो चाहे कर सकते हैं, उनके मार्ग मे कोई बाधक नही हो सकता।

भगवान् यदि देना चाहे तो वह किसी भी मार्ग मे दे सकता है।

" राम दे तो छाड मे ही देन्दे।"

देव विषयक कुछ कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनमे विचार का स्तर अपेक्षाकृत उच्च मालूम पड़ता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कहावत पर विचार कीजिये —

' माने तो देव नही भीत को लेव।'

अर्थात मूर्ति मे देवत्व के आरोप का मूल कारण भावना ही है। जिसकी पुष्टि संस्कृत के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भी हो जाती है —

न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायां न मृण्मये।

भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावाहि कारणम्॥[1]

---

1 मिलाइये—

"मानला तर देव नाही तर धगड (मराठी कहावत)

(ख) नैतिकता और धर्म सम्बन्धी कहावतें —

एक सामान्य परिवार मे ही हम देखते है कि कुछ सदस्य भले होते है, कुछ बुरे। राजस्थान की कहावतों का परिवार तो बहुत बडा है। फिर यदि इस विशाल परिवार मे अच्छी और बुरी दोनो ही प्रकार की कहावतें उपलब्ध हो तो इसमे आश्चर्य की क्या बात है ? जब दुनिया मे स्वार्थपरता तथा असत्य आदि अवगुण है तो उनसे सम्बन्ध रखने वाली कहावतें ही क्योकर नहीं मिलेगी ? कहावतो मे तो जीवन की अभिव्यक्ति होती है, उस जीवन की जिसमे धूप और छाया दोनो है। जीवन का यदि एक शुक्ल पक्ष है तो दूसरा कृष्ण पक्ष भी है। उदाहरण के लिये नैतिक और अनैतिक दोनो प्रकार की कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

नैतिक

(1) साच नै आच कोन्या।
अर्थात साच को अच नही।

(2) साच रा बोलबाला, भूठे का मुँह काला।
सच्चे का बोलबाला और भूठे का मुँह काला।

(3) ऐंठवाडो खाणो पण ऐंठवाडी बात नहीं करणी।
भूठा खा भले ही लिया जाय किन्तु भूठी बात नहीं करनी चाहिए।

(4) धरम किया सू धन बढे।
अर्थात धर्म करने से धन बढता है।

(5) नीत थल बरकत है। (नीयत के अनुसार बरकत होती है।)

अनैतिक

(1) करो पाप तो खाओ आप।
अर्थात पाप करो और आप कर खाओ।

(2) करो धरम तो फूटै करम।
अर्थात् धर्म करो और दुर्भाग्य का आश्रय लो।

(3) लाठी कही भाठा की दइ।
अर्थात सत्य कहने से दूसरे का ऐसा लगता है जैसे पत्थर से प्रहार किया हो।

ऊपर दी हुई नैतिक कहावतो मे सत्य और धर्म का अवधयकार हुआ है जब कि अनैतिक कहावतो मे पाप का फलता-फूलता हुआ सत्य का कटु बतलाया गया है।

उक्त अनैतिक कहावतो को पढकर यह भ्रान्त धारणा नही बना लेनी चाहिए कि इस प्रकार की उक्तियाँ अनैतिकता के प्रचारार्थ जीवन-सूत्रो का काम देने लगती हैं। वस्तुस्थिति यह है कि जब हम ससार मे अन्याय और अत्याचार करने वालो को अमन चैन से जीवन व्यतीत करते हुए देखते हैं तथा धर्मात्मा व्यक्ति हमारे ही सामने दु ख भोगते है तो हमारे मुख से थोडे समय के लिए इस प्रकार के उद्‌गार निकल पडते हैं जिनसे नैतिकता और धार्मिक भावना के प्रति हमारी आस्था हिलती हुई सी मालूम पडती है, किन्तु स्थानीय रूप से हमारा ध्यान उन्ही कहावतो की ओर जाता है जो नैतिकता और धार्मिक भावना का समर्थन करती है। अनैतिकता के प्रचार की बात दूर पूर्वी देशो में तो नीति–साहित्य के अन्तर्गत ही कहावतो की गणना की गई है राजस्थानी कहावतो में अनैतिक कहावतो की अपेक्षा नैतिक कहावतें ही सख्या में भी अधिक है। अनैतिक कहावतें अनेक बार तथ्य-कथन के रूप में प्रयुक्त न होकर व्यग्य के रूप में भी उच्चरित होती हैं।

('राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन' से)

शोधपरक आलेख 2

राजस्थानी पहेलियो मे वर्षा

पहेलियों की परम्परा बहुत प्रचीन है। वैदिक साहित्य मे 'ब्रह्मोदय' के उदाहरण मिलते हैं जो पहेलियों के ही पूर्वरूप कहे जा सकते हैं। महाभारत के कूट श्लोक तथा श्रीमद्‌भागवत के 'वाचककूट' विद्वानो म प्रसिद्ध है। इसी प्रकार दृष्टकूट' का प्रयोग सूरदास के कूट-पदो के सम्बन्ध म ख्याति प्राप्त कर चुका है। राजस्थान मे गूढा हीयाली आडी प्हाली आदि अनेक शब्द सामान्य पहली के लिए प्रयुक्त होते हैं।

बहुत-से आलकारिको न प्रहेलिका' को एक अलकार के रूप म स्वीकार किया है। वात्स्यायन के कामसूत्र मे जिन 64 कलाओ के नाम गिनाये गये हैं उनमे प्रहेलिका अथवा पहेली बूझने को भी एक कला माना गया है। प्राचीन काल का उद्यान गोष्ठियो मे मनोरजन तथा बुद्धि परीक्षा की दृष्टि से काव्य प्रहेलिका का विशिष्ट स्थान था। आज भी ग्रामीण जन चौपालो पर बुद्धि को परखने तथा मनोविनोद के लिए परस्पर पहेलिया बूझते हैं। राजस्थान मे विवाह के समय जवाई म पहेलिया पूछी जाती है। एक उदाहरण सुनिए —

जाजम बिछाई चदन चौक म।
म्हारै स समेटी न जाय ।।
हठीला डावडा।
म्हारी प्हाली रो अरथ बताय ।।

उक्त पहली का उत्तर बादल या धरती है जिसे बतला कर चतुर जवाई अपनी जीत का अनुभव करता है।

राजस्थान मे वर्षा विषयक पहेलियाँ अनेक रूपो म प्राप्त होती हैं। सबसे पहल मगलाचरण के रूप मे एक वर्षा सबधी गूढा प्रस्तुत है —

सायर पुत्री तास पति, तिस बपधी भरतारि।
जहाँ तास पित भव करै, ते सुखिया ससारि।।

समुद्र की पुत्री लक्ष्मी, उसका पति कृष्ण, उसकी बहिन सुभद्रा उसका पति अर्जुन और उसका पिता इन्द्र जहा वर्षा करता है, वहा के लोग सुखी रहते हैं।

इस प्रकार की गूढ़ा सूरदास के 'दृष्टकूटा' का स्मरण दिलाये बिना नहीं रहती। राजस्थान की वर्षा विषयक अनेक पहेलियों में 'सारग' शब्द की अनेक आवृत्तियाँ हुई हैं और यमक अलकार की सहायता से कूट पदों की रचना कर दी गई है। जसे—

सारग ले सारग चली सारग पूग्यो आय।
सारग सारग म दियो, का भी सारग माय।।

पनिहारिन घड़े को लेकर पानी के लिए चली, इतने में वर्षा आ गई। उसने वस्त्र घड़े में रखा और वह भी स्नान करने लगी।

इसी प्रकार 'सारग' शब्द को लेकर बादल और मोर सबधी यह पहली भी उल्लेखनीय है—

सारग मुख सारग गह्यो, सारग बाल्यो आय।
जा सारग मुख स कहै, ता मुख को सारग जाय।।

एक मोर ने साप को चोंच से पकड़ रखा था। इतने में बादल गरजा यदि मोर गरजते हुए बादल को सुन कर मुह से शब्द निकाले तो उसके मुख का साप छूट जाय।

मोर राजस्थान का विशिष्ट पक्षी है जिसे अब तो राष्ट्रीय गौरव भी प्राप्त हो गया है। मोर को लेकर अनेक पहेलियां राजस्थान में प्रचलित हैं। एक छोटी सी तुकात पहली लीजिए—

एक जिनावर ऐसो, उण री दुम री माथे पैसा।

प्रश्नोत्तर को लेकर चलने वाली, पहेलियों में एक प्रकार का विशेष आकर्षण मिलता है। उदाहरण के लिए इन्द्र राजा और बिजली रानी से सबधित दो पहेलियां प्रस्तुत हैं—

प्रश्न—बिना फूक बजावे बाजा
बिना राज रै बाजै राजा
खो भायला। कुण छै राजा?

उत्तर इन्दर राजा।

प्रश्न—विना मेल मालिया राणी
राती पीली ओढ ओढणी
कडक रूसे वाजै राणी
किण री धीवड किण री राणी ?

उत्तर—बिज्जू राणी

सामान्यत यह समझा जाता है कि कि पहेलियां से केवल मस्तिष्क का व्यायाम होता है किन्तु ऊपर की दोनों पहेलियां में बुद्धि परीक्षा के साथ-साथ भावों का भी व्यायाम हो जाता है । इनसे रस की वष्टि भी होती है, इसलिए ये काव्य का सा आनन्द प्रदान करती हैं ।

एक पहेली मे बिजली देखने के लिए आह्वान किया गया है जिसकी अपनी ही निराली छटा है —

पांचिया कन पांच कौडी, लालिया कन लखो ।
बीजली अगूठिया पहर चालो मरन्ना देखो ॥

झिरमिर-झिरमिर बरसते हुए मेह मे यह दृश्य भी देखने योग्य है —

झिरमिर-झिरमिर मेहूडो बरसे कडया मूदो काढ़ो ।
लखो रे बसती का लोगो ल्यावें लादो ॥

इसी प्रकार एक दूसरा वार्तालाप लीजिए । सालिया ने जीजे से पूछा —

मोती बरखा ऊजला हाथ लग्या कुमलाय ।
ना माली कै नीपजै, ना राजा के जाय ॥

चतुर जवाई समझ गया कि उन ओलों की चर्चा हो रही है जहां 'छोल्यां कानी छू तको खायां कोनी बीज ।, इसलिए उसने चतुराई से उत्तर दिया—

हाट ना बाजार ना बाण्ये की दुकान ना,
आवादयो चत अर जावा दयो होली ।
थे मागो दो च्यार, म्हे भर देस्या झोली ।

स्वाति नक्षत्र मे सीप म वर्षा का जल गिरने से मोती बन जाते हैं, इसको लेकर जो पहली और उत्तर राजस्थान म प्रचलित हैं, वे यहा प्रस्तुत हैं —

जिए वन पवन न सचरै, पाखै न, वसै भाय, पदी
तिएवन रा फल मोकलो, साचा साजन जाय ।।
माता इए री जल वसै, पिता वसै आकास ।
कहा पुराएा मोकला नु वा तो आसो मास ।।

पहली प्रस्तुत करने की एक पद्धति वह है, जिसके प्रारम्भ म कहा जाता है– हमन एक अचभा देखा अथवा सुना है। इस तरह की उक्तिया कबीर म बहुत हैं। जुगनू को लक्ष्य म रख कर कही हुई इस पद्धति की एक पहली लीजिए

एक अचभा म्हे सुण्यो उडती आवै लका ।
आद नाव की बणै कु वाडी, अत नाव का पखा।।

पहेली का उत्तर है पटबीजएो । पट का अथ है किवाड और बीजएो का अथ व्यजन अथवा पखा ।

कुछ पहलिया एसी होती है जिनका रहस्य प्रसग का पता चलन पर ही खुलता है। उदाहरए के लिए दो पहेलिया लीजिए –

1 एक जाट की भरोटी म साप घुस गया। जाट खेत म से भरोटा घर पर ले आया। जाटनी न भरोटी खोली तो साप न फुफकारा। इस पर जाटनी बोली —

भली करी बरस्यो नही, बरस्या पडता काल ।
बिन बरस्या सम्मत हुव ऐसा दीन दयाल ।।

2 एक पनिहारिन पानी के लिए चली, किन्तु पैर फिसल जान अथवा वर्षा क कारए उसका काम रुक गया, जिस पर उसने कहा —

मैं आई ही तन्न लेवए, तू ल बैठ्यो मन्न ।
एक बार मन्न छोड दे तो मैं ले ज्यादू तन्नै ।।

आस सम्बधी यह पहेली भी विरोध– पद्धति के कारए आकपक हो गई है —

बरखा बरसी रात न भीजी सब बएराय ।
घडो न डूबै लाटियो, पछी तीस्यो जाय ।।

वर्षा स तैयार होने वाल ककडी, मतीरे तथा फसल का नुकसान पहुचान वाले कातरा स सबधित कुछ पहेलिया और प्रस्तुत हैं –

1 हरी छड़ी वन म पड़ी,
कांच का महैल कचन की कनी ।
जठै मरवत की घूंट,
घर मिसरी की डली ॥

(उत्तर-मतीरा)

2 काची नार कचकची भर जोबन म सारी ।
म्हू थने पूछू बालमा, कूणी लाग प्यारी ॥

(उत्तर-ककड़ी)

3 मस रग माला चग्गा, एक मुरगी हम ।
राजा मार्‌या खेत म, ना लोहू ना माम ॥

(उत्तर-कातरो)

दो बैलो वाले हल तथा हलवाले को लेकर कही हुई यह पहेली लीजिए–

राणो चाल रगमग, तीन मूडा दस पग ।

वर्षा– विषयक पहेलिया के अनेक रूप राजस्थान म उपलब्ध हैं, जिनमें म कुछ की भांकी यहां प्रस्तुत की गई ह ।

किसी कूट पदय गूढा उक्ति अथवा पहली का उत्तर जब कोई व्यक्ति दे देता ह तो उसको अपनी बुद्धि की कुशलता पर आत्म गौरव का अनुभव होता है । इसलिए शिक्षित-अशिक्षित सभ्य असभ्य सभी लोगो म पहेलियो का प्रचार है । ग्रामीण लोगा के लिए तो य पहेलिया अलिखित बौद्धिक ज्ञान कोष ही हैं ।

पहेलिया की दृष्टि से राजस्थान पर्याप्त रूप से समृद्ध है । वर्षा– विषयक पहेलियो की भी यहा कमी नहीं काफी अच्छी सख्या म वे प्राप्य हैं ।

('चिन्तन के आयाम' से)

शब्द-योगी

कन्हैयालाल

सहल

डा हेतु भारद्वाज